महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुख पत्र

वर्ष : ६० **अंक** : ०२

दयानन्दाब्द: १९३

विक्रम संवत्: माघ कृष्ण २०७४

कलि संवत्: ५११८

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११८

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.
त्रिवार्षिक-५८० रु.
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

जनवरी द्वितीय २०१८

अनुक्रम

०१. आर्यसमाज में खण्डन क्यों?	सम्पादकीय	०४
०२. ईश्वर संभवत: है, संभवत: नहीं है!	डॉ. धर्मवीर	०६
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. पं. लेखराम जी के १२५वें.....	ओम मुनि	१४
०५. वायुमण्डल	पं. गुरुदत्त विद्यार्थी	१५
०६. प्राणोपासना-७	तपेन्द्र वेदालङ्कार	२०
०७. शङ्का समाधान- १७	डॉ. वेदपाल	२४
०८. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		२५
०९. विज्ञान आस्तिकता और नास्तिकता	प्रभात नायक	२७
१०. राष्ट्र रक्षा में महर्षि दयानन्द	ब्रि. चितरंजन सावन्त	३२
११. बाधाओं को बौना करें	महात्मा चैतन्यस्वामी	३४
१२. वानप्रस्थ	प्रकाश चौधरी	३८
१३. पाठकों के विचार एवं प्रतिक्रिया		४०
१४. संस्था-समाचार		४१
१५. आर्यजगत् के समाचार		४२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

- **उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ** -
www.paropkarinisabha.com → **Daily Pravachan**

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

आर्यसमाज में खण्डन क्यों?

महर्षि दयानन्द ने हरिद्वार के कुंभ मेले में सर्वप्रथम पाखण्ड-खण्डिनी पताका फहराई थी, जिसका उद्देश्य था 19वीं शताब्दी में फैले हुए विभिन्न प्रकार के अवैदिक विचारों, पाखण्डों का खण्डन करना और सत्य वैदिक धर्म से धर्म-प्रेमी जनता को अवगत कराना। प्राचीन भारतीय परम्परा में **खण्डन** और **मण्डन** दो शब्द साथ-साथ उल्लिखित होते हैं। महाभारत काल के बाद शनैः शनैः वेदविरुद्ध विचारधाराओं का उद्भव होने लगा था, क्योंकि तत्समय अधिकतर विद्वान और योद्धा काल-कवलित हो गये थे, फिर भी भारत में अनेक संत, ऋषि और योगी और विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से मानव कल्याण हेतु वेद की वाणी का प्रचार और प्रसार किया और इसके लिए उन्हें प्रतिपक्ष के विचारों का खण्डन करना अपरिहार्य था।

उपनिषदों और षड्दर्शनों की शैली का अवलोकन किया जाये तो विदित होगा कि स्वमत के प्रतिपादन के पश्चात् प्रतिपक्षी की आपत्तियों के निराकरण के साथ उसके मत का खंडन भी अनिवार्य हो जाता है और इसीलिए न्यायदर्शन के प्रतिपाद्य विषय में तर्क के स्वरूप का विस्तार से विवेचन किया गया, जिसमें न्यायदर्शन ने विभिन्न प्रमाणों एवं तर्क के द्वारा पक्षसिद्धि-विधि प्रतिपादित की है। जिससे मनुष्य तत्त्वज्ञान या सद्ज्ञान की प्राप्ति कर सके। इसलिए महर्षि दयानन्द ने मण्डन के साथ खण्डन को भी स्वीकार किया और आर्ष परम्परा का निर्वाह करते हुए अपने ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश में मानवनिर्माण के प्रारम्भिक दस समुल्लासों में वेदानुकूल विभिन्न दृष्टियों से मानव कल्याण का कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जिसमें अन्धविश्वास, मिथ्याचार और अवैदिक मतों का प्रसंगोपात्त खण्डन करते हुए वेद-मत एवं आर्षसिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। 11वें तथा 12वें समुल्लासों में भारत में पल्लवित और पुष्पित जीवन दर्शन की विधियाँ थीं, जबकि 13वें और 14वें समुल्लास में भारत से इतर देशों में जन्मे विभिन्न मत और सम्प्रदायों का खण्डन है।

आर्यसमाज ने महर्षि दयानन्द की खण्डन-मण्डन की विधि को स्वभावतः स्वीकार किया जिसके परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता से पूर्व तक लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत में आर्यसमाज जैसा अन्य कोई संगठन नहीं था, जो इस पद्धति में आर्यसमाज का सामना कर सके। आर्यसमाज के दिग्गज संन्यासियों, पंडितों एवं प्रचारकों ने इसी पद्धति पर चलकर सभी वैदिकेतर मत-मतान्तरों के गढ़ों को ध्वस्त किया। यह सत्य की विजय के साथ-साथ ऋषि-अनुमोदित शास्त्रार्थ-पद्धति के कारण भी संभव हुआ।

महर्षि दयानन्द ने जितना अधिक रचनात्मक या मंडन का कार्य किया उससे कम खण्डन का कार्य किया है। महर्षि ने शालीनता, सत्य तथा मानव कल्याण के आधार पर ही खण्डन-मण्डन किया है। फिर भी यह कहा जाता है कि आर्यसमाज खण्डन ही करता रहता है। वस्तुतः सिद्धान्तों के प्रति अवैदिक मान्यताओं, अन्धविश्वासों और प्रकृतिविरुद्ध मत-मतान्तरों का खण्डन करके ही सद्विचारों का प्रचलन किया जा सकता है। जिन मतवादों ने भारतीय चिन्तन-परम्परा को अज्ञान से ढक दिया था उसे हटाने के लिए खण्डन अपरिहार्य हो जाता है।

हमारा स्पष्ट रूप से सप्रमाण यह विश्वास है कि वेद मानवता के कल्याण का संदेश देते हैं। वे केवल धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं हैं अपितु सभी सत्य विद्याओं का स्रोत हैं। मानवोद्धार की सभी तरह की प्रवृत्तियाँ वेदों के सार्वभौमिक सिद्धान्तों में मिलती हैं, जिनकी आज अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि चिन्तन मनुष्य का स्वाभाविक गुण है, इसलिए चिन्तन सकारात्मक होगा तो मानव-मानव के बीच प्रेम और स्नेह की प्रवृत्ति विकसित होगी। सत्य के प्रति उत्कट इच्छा ही मनुष्य को सिद्धान्त और व्यवहार दोनों की ओर उन्मुख करती है। आज आर्यसमाज के समक्ष सबसे अधिक चुनौती वक्तृत्व और कर्तृत्व के बीच है। इसलिए ईश्वर-भक्ति, ईश्वर-प्रेम और ईश्वर-प्राप्ति के प्रति सतत ध्यान में रहने का उद्देश्य ही मानव का अभीष्ट होना चाहिए। इसकी

प्राप्ति के लिए ही संसार की समस्त प्रवृत्तियाँ हैं। लेकिन जब हम सामान्य व्यावहारिक प्रवृत्तियों में ही अटक जाते हैं तो हमारा लक्ष्य तिरोहित हो जाता है। मानव में असीम शक्तियाँ हैं और उन शक्तियों को जब किसी लक्ष्य के साथ संकेन्द्रित कर दिया जाता है तब उसकी सिद्धि में शंका नहीं होती। हमारी तर्कपद्धति हमें विचलित करने के लिए नहीं, प्रयुक्त सत्य को पहचानने एवं उसे प्राप्त करने में हमारी सहायता करती है। महर्षि दयानन्द की वैश्विक दृष्टि, जड़ता के विरुद्ध और तथ्यों से स्थापित, उदारचेत्ता-भाव से सम्पन्न है। आर्यसमाज खुले दृष्टिकोण का हामी रहा है। इसलिए खण्डन के साथ मण्डन की सृजनशीलता हमेशा विद्यमान रही है।

बहुधा यह माना जाता है कि आर्यसमाजी केवल शुष्क तर्क की बात करते हैं, ईश्वर-भक्ति का विचार नहीं करते। मैं समझता हूँ कि यदि **आर्याभिविनय** को देखा जाए तो महर्षि दयानन्द ने मानव और ईश्वर के मध्य भक्ति-भाव की निर्मल गंगा प्रवाहित की है और वेद-मन्त्रों के द्वारा ईश्वर के प्रति मनुष्य के जितने भी भक्तिभाव संभावित माने गये हैं, वे सभी प्रकट होते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि अन्य मतों, सम्प्रदायों में जिस प्रकार की भक्ति भावना है उस प्रकार की आर्यसमाज में दृष्टिगोचर नहीं होती और न ही आर्यसमाज को वह स्वीकार्य है। लेकिन मनुष्य-मनुष्य के बीच एवं परिवार और समाज के मध्य भावनात्मक लगाव अवश्य होना चाहिए और इसीलिए आर्यसमाज का विगत इतिहास उत्सर्गों का इतिहास रहा है जो मानवीयता की रक्षा के लिए किए गए। हमारे संन्यासियों ने वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर अपना जीवन जिया, क्योंकि उनका आदर्श महर्षि दयानन्द जैसा राष्ट्रचेत्ता पुरुष था। केवल स्वयं की सिद्धि कर समाज के प्रति उपेक्षा का भाव पलायनवाद है। आर्यसमाज पलायनवाद को स्वीकार नहीं करता। कर्म क्षेत्र में रहकर मानवीय व्यवहार के विरुद्ध आचरण का खण्डन करता है और एक व्यवस्था को समाज के प्रति जीवन जीने के लिए उद्यत करता है। मानसिक दुश्चिन्ताएँ, अहंकार, क्रोध, हीनता, स्वार्थपरता इत्यादि दुष्प्रवृत्तियों से बचने के लिए जो उपाय विगत दो हजार वर्षों में हुए, उन्होंने मनुष्य को मुक्त होने की अपेक्षा बंधन में अधिक बाँधा। ईश्वरभक्ति से संश्लिष्ट व्यक्तित्व में विनम्रता उसकी मधुरतम सुगन्ध है। परिस्थितियों के अनुसार सत्य का बाह्य रूप तो परिवर्तित हो सकता है लेकिन हृदय की भावना को तिरोहित नहीं किया जा सकता। इसलिए खण्डन करने से अगर किसी का मन दु:खी होता है तो वह उसी प्रकार है जैसे शल्य-क्रिया में रोगी को अनुभूति होती है। जीवन में अनुकूलता, प्रतिकूलता, सफलताएँ और असफलताएँ, दु:ख और सुख मिलते ही रहते हैं, लेकिन उनके बावजूद हताश और निरुत्साह होकर जीवन नहीं जिया जाता। वेद कहता है-

अदीना: स्याम शरद: शतम्।।

अर्थात अ-दीन होकर हमे जीना चाहिए।

संसार त्रिगुणमय है तदनुसार प्राणियों की प्रवृत्तियाँ भी होती हैं। मानव-व्यवहार से संसार विशेषतया संचालित होता है; विभिन्न गुणों की प्रधानता या गौणता से व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और भूमण्डल के व्यवहार संचालित होते हैं। अत: हमारी विचार-सरणि की सात्त्विकता और निर्मलता बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिसमें खण्डन-मण्डन-परक तर्क का महत्त्वपूर्ण स्थान है। दूषित विचारों से निर्मित प्रवृत्तियां मानव को पतन की ओर ले जाती हैं और सात्त्विक विचारों से निर्मित प्रवृत्तियाँ पुण्यमार्ग और कल्याण की ओर। श्रेष्ठ व्यक्तियों का कर्त्तव्य है कि समाज को पतनोन्मुखी न बनने दे और इसके लिए ऋषियों द्वारा प्रणीत चिन्तनशैली का अनुकरण करे।

संसार में जब तक अज्ञात का अंधकार है, कुरीतियाँ हैं, राक्षसी प्रवृत्तियाँ, अन्याय है तब तक इनके प्रतिकार के लिए आर्यजनता को सजग रहकर, महर्षि और उनके अनुयायियों के पथ का अनुगमन करके इनका खण्डन करना ही होगा; ऐसा करना पाप नहीं प्रत्युत पुण्य और कर्त्तव्य है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि खण्डन में मण्डन और मण्डन में विपरीत विचारों का खण्डन सन्निहित रहता है। विद्याप्राप्ति और उसके प्रचारार्थ अविद्या-जन्य विचारों और कृत्यों का खण्डन अनिवार्य है-

यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतर:।।

- दिनेश

प्रवचनमाला-१६

ईश्वर संभवतः है, संभवतः नहीं है!

डॉ. धर्मवीर

ईश्वर की चर्चा, उसकी जानकारी हमारे लिये जितनी अनिवार्य है, उसे ठीक से समझाना उतना ही कठिन भी है। ईश्वर के स्वरूप को सामान्यजन के मन में ठीक से बिठा देना कोई आसान बात नहीं, क्योंकि सरलता लाने में थोड़ी सी भी चूक उसे पाखण्ड का रूप दे सकती है। इसे ध्यान में रखते हुए सिद्धान्तों के मर्मज्ञ और मानव-मन की क्रियाओं के पारखी आचार्य डॉ. धर्मवीर ने एक ट्रैक्ट लिखा 'ईश्वर संभवतः है, संभवतः नहीं है।' यह दो किश्तों में दिया जा रहा है। आर्यजन इसे प्रचार का साधन भी बना सकते हैं और विश्लेषण का भी। अधिक से अधिक लाभ हो-इसी विश्वास के साथ।

-सम्पादक

ईश्वर को लेकर बहुत बातें की जाती हैं। इससे यह तो नहीं माना जा सकता कि बातों में ईश्वर है, क्योंकि ''बातों में ईश्वर नहीं है'' उसकी चर्चा भी कम नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि बातों में ईश्वर है भी, बातों में ईश्वर नहीं भी है। पहले उनकी बातों पर विचार करते हैं जिनकी बातों में ईश्वर नहीं है।

प्रथम तो ईश्वर के मानने की आवश्यकता है या नहीं? यदि ईश्वर नहीं हो तो क्या कठिनाई है? सामान्य रूप से ईश्वर के मानने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। कुछ कार्य मनुष्य कर लेता है तथा कुछ कार्य उसे किये हुए मिल जाते हैं, फिर ईश्वर की आवश्यकता कहीं नहीं पड़ती। ईश्वर के मानने की आवश्यकता कब होती है? या तो जब विचार विनिमय करते हैं तब हमें बौद्धिक स्तर पर लगता है कि ईश्वर की आवश्यकता है तथा मनुष्य की कोई मजबूरी भी हो सकती है, जिसके चलते ईश्वर की आवश्यकता अनुभव होती है।

बौद्धिक स्तर पर विचार करने पर यह बात स्पष्ट है कि ईश्वर को जड़ मानने पर ईश्वर मानने की आवश्यकता नहीं हो सकती, क्योंकि ईश्वर से जिन आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है वे आवश्यकतायें जड़ से पूरी नहीं की जा सकतीं। जड़ वस्तु हमारी इच्छाओं को जान नहीं सकती अतः वह इच्छाओं को पूरा भी नहीं कर सकती। इस प्रकार जड़ जो महाभूत है, पर इसे ईश्वर स्वीकार किया जाए तो उसका मानना व्यर्थ है।

किसी भी चित्र को देखकर उसे पहचान लेते हैं तो यह कलाकार की सफलता है। यदि हम एक चित्र को देखें, उसे कोई दूसरे नाम से पुकारें और किसी अन्य चित्र को किसी और नाम से, तो निश्चय ही नाम और आकृति की भिन्नता से वे दोनों चित्र दो भिन्न व्यक्तियों के होंगे। हम मन्दिर में राम की मूर्ति को देखकर उसे भगवान् राम की मूर्ति कहते हैं। हनुमान की मूर्ति को भगवान् राम नहीं कहते, भगवान् हनुमान कहते हैं। भगवान् विशेषण है, राम और हनुमान नाम हैं। अतः मूर्तियाँ भगवान् की नहीं हैं, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की हैं। राम और हनुमान की मूर्ति भगवान् की मूर्ति होती तो दो नाम और दो भिन्न आकृतियाँ नहीं होतीं और एक मन्दिर में अनेक प्रकार की मूर्तियों की आवश्यकता भी नहीं होती। हर व्यक्ति किसी विशेष आकृति का उपासक है, अतः सभी को सन्तुष्ट करने के लिए सभी आकृतियों को भगवान् रूप में स्थापित कर लिया जाता है।

सबसे विचित्र बात है भगवान् को भोग लगाना। हम पूजा करते हुए यह मानते हैं कि भगवान् खाता है, पीता है। आज तक मनुष्य तो क्या, पशु-पक्षी भी बिना मुख खोले नहीं खा सकते। एक माँ अपने तत्काल उत्पन्न हुए शिशु को भी बिना मुख खोले अपना दूध नहीं पिला सकती। फिर हम हजारों वर्षों से भगवान् को भोग लगाने के नाम पर खिलाने का अभिनय करते हैं और उसे सत्य मानते हैं। घर आये अतिथि को खिलाने में, घर में पाले पशु, गाय, कुत्ते आदि प्राणियों को खिलाने में कष्ट होता है, परन्तु भगवान् को जीवन भर खिलाते हैं और खिलाने पर सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं, क्योंकि वह खाता ही नहीं। मन्दिर में जाकर भगवान् से माँगते हैं, परन्तु भगवान् को अपने घर पधारने का निमन्त्रण नहीं देते, क्यों? क्योंकि वह जड़ है, चल-फिर नहीं सकता।

जो सदा रहता है वह कभी नहीं रहा-ऐसा नहीं हो

सकता, परन्तु जड़ वस्तुओं से बनाया भगवान् आज होता है कल नहीं होता। गणेश जी, देवी-देवताओं की प्रतिमायें गणेश चतुर्थी या दुर्गा पूजा पर हजारों नहीं, लाखों की संख्या में कूड़े-कचरे से बनाई जाती हैं। उनको पण्डाल में सजाया जाता है, उनकी पूजा-आरती की जाती है, भोग लगाया जाता है, उनसे प्रार्थनाएँ की जाती हैं, नमस्कार किया जाता है और अगले दिन कचरे के ढेर पर फेंक दिया जाता है। इस प्रकार कचरे से बना भगवान् वापस कचरे में चला जाता है। यदि जड़ वस्तु को आप भगवान् मानते हैं तो मूर्ति बनने से पहले भी कचरा भगवान् था और वापस कचरे में फेंकने के बाद भी भगवान् ही रहेगा। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता, अत: जड़ वस्तु भगवान् नहीं है। आप उसे कुछ समय के लिए भगवान् मान लेते हैं। इसीलिए गणेश विसर्जन के पश्चात् समुद्र में फेंके गये चित्रों के नीचे लिखा था- कचरे का भगवान् कचरे में।

ईश्वर नहीं होने का पहला तर्क है कि ईश्वर होता तो एक पदार्थ होता और पदार्थों को जाना जाता है। अत: ईश्वर को भी जान लिया जाता। मनुष्य के पास जानने के साधनों के रूप में उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, जिनसे संसार के सभी पदार्थ जाने जाते हैं। जानने के इन साधनों में से किसी भी साधन से ईश्वर की प्रतीति नहीं होती, अत: ईश्वर का अस्तित्व नहीं है।

जानने के साधनों में सबसे प्रमुख नेत्र हैं, अत: अधिकांश लोग ईश्वर को आंखों से देखना चाहते हैं। आंखों से देखने का अर्थ वस्तु के रूपवान् होने से लेते हैं। कोई वस्तु रूपवाली होने पर ही दिखाई दे सकती है, परन्तु केवल आँख से दिखाई देना मात्र किसी वस्तु के होने का आधार नहीं बनता। नेत्र से अतिरिक्त ज्ञानेन्द्रियों से जो वस्तुएँ जानी जाती हैं, वे सभी रूप से रहित हैं, जैसे गन्ध, शब्द आदि। इनका आँख से सम्बन्ध नहीं है, परन्तु इन वस्तुओं का अस्तित्व हम सभी अनुभव करते हैं। अत: इनसे जानी जाने वाली वस्तुओं के लिए भी देखना शब्द का प्रयोग करते हैं। देखो, शब्द कितना मीठा है, गन्ध कितनी अच्छी है, देखो, स्पर्श कितना कोमल है, स्वाद कैसा मधुर है। इस प्रकार देखना शब्द का अभिप्राय जानना होता है।

जो लोग कहते हैं कि ईश्वर को देखना है, देखेंगे तो ही स्वीकार करेंगे, उनसे एक प्रश्न किया जा सकता है कि क्या कोई केवल देखने पर ही उस वस्तु को मानता है? जो वस्तु दिखाई नहीं देती, क्या उसे स्वीकार नहीं करता? ऐसा व्यक्ति भी जानता है कि भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी, सुख-दु:ख, पीड़ा, हर्ष कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे आँखों से देखा जा सके। संसार में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसने इनको देखा हो, परन्तु सभी इनका अनुभव करते हैं। अत: यह कथन कि दिखने वाले को ही स्वीकार करते हैं न दिखने वाले को नहीं, मिथ्या सिद्ध हो जाता है।

इन इन्द्रियों से जो वस्तुएँ जानी जाती हैं, वे भौतिक होती हैं। इन्द्रियाँ भौतिक हैं अत: अपने समान भूतों को वे पहचानती हैं। आँख अग्नि का स्वरूप है, आँख से रूप जाना जाता है। गन्ध पृथ्वी का गुण है अत: नासिका से पृथ्वी तत्त्व का बोध होता है। रस जल का गुण है अत: रसना से रस का ज्ञान होता है। स्पर्श वायु का गुण है अत: त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होता है। पाँचों वस्तुओं को जानने के लिए पाँच इन्द्रियाँ कार्य करती हैं। पाँच इन्द्रियों से पांच भूतों को जाना जाता है।

इन्द्रियाँ भौतिक हैं अत: भौतिक पदार्थों को जानने का इनमें सामर्थ्य है, परन्तु इनके जानने का सामर्थ्य उनका अपना या गोलक का नहीं है। यदि गोलक में सामर्थ्य होता तो मरने के पश्चात् भी आँख देखती, परन्तु ऐसा नही होता। इसके विपरीत आँख एक मरे हुए व्यक्ति के चेहरे से निकालकर जीवित व्यक्ति में लगा दी जाती है तो वही आँख देखने लगती है। इन भौतिक इन्द्रियों से भौतिक पदार्थ जाने जाते हैं, परन्तु दोनों भौतिक पदार्थ 'आँख और वस्तु' विद्यमान होने पर भी ज्ञान का अभाव सर्वत्र परिलक्षित होता है। अत: ज्ञान भूतों का गुण नही है अन्यथा भौतिक पदार्थों में अवश्य विद्यमान होता। इसी प्रकार चेतन की इच्छापूर्वक क्रिया भौतिक पदार्थों में दिखाई देने पर भी वह क्रिया भौतिक वस्तुओं का धर्म नहीं है, अन्यथा मृतक के शरीर में जीवित अवस्था में होने वाली क्रियायें सड़ना, गलना, सूखना आदि प्रारम्भ हो जाती हैं।

एक और प्रश्न ईश्वर के सम्बन्ध में विचारणीय है। हम कहते हैं-अजी मानो तो पत्थर भी भगवान् है, न मानो तो पत्थर है। यहाँ जानना यह है कि हम ईश्वर है इसलिए

मानते हैं या ईश्वर को मानते हैं इसलिए वह ईश्वर है? पत्थर को भगवान् मानने की बात से तो लगता है ईश्वर है नहीं, केवल हम मानते हैं इसलिए है। मानने और होने में बड़ा अन्तर है। मानने पर केवल मानने वाले के लिए ही वह होता है, जो नहीं मानते उनके लिए वह नहीं हो सकता। इसके विपरीत होने पर सबके लिए मानने की बाध्यता है। उदाहरण के लिए इस बात को इस तरह समझा जा सकता है-एक व्यक्ति का एक पुत्र है। इसको पिता भी मानता है, पुत्र भी मानता है, दूसरे लोग भी मानते हैं। दूसरे व्यक्ति का पुत्र नहीं है, परन्तु वह उसे पुत्र मानता है, पुत्र भी उसे पिता मानता है, अन्य लोग भी वैसा ही स्वीकार करते हैं। एक मनुष्य किसी जानवर को बेटा कहता है, कुत्ते को बेटा कहता है, गाय को माता कहता है। मानने वाला व्यक्ति कहता है, कहता रहे, परन्तु न प्राणी उसे अपना पिता मानता है और न ही दूसरे लोग उसे बेटा कहते हैं। चौथी परिस्थिति है कि किसी जड़ पदार्थ को हम कुछ मानते हैं। भूमि को माता कहते हैं, पत्थर को भगवान् कहते हैं, परन्तु जो मानता है वह कुछ भी मानता रहे, इसे न तो दूसरा कोई भगवान् मानता है, न पत्थर स्वयं को भगवान् कहता है। भूमि को हिन्दू माता कहता है, नमन करता है। मुसलमान ऐसा करने से इन्कार कर देता है। जब हम किसी वस्तु को भगवान् मानते हैं तब वह वस्तु भगवान् होती नहीं, हम केवल उसे मानते हैं। इसी कारण जो जिसको चाहे भगवान् मान सकता है और वह वस्तु उसके लिए भगवान् होती है। यही भगवान् के अनेक होने का कारण है। कोई स्थान को भगवान् मानता है, कोई पिण्ड को, कोई पहाड़ को, कोई पशु को, कोई पृथ्वी को, कोई पानी को, कोई पुस्तक को, कोई व्यक्ति को। ईश्वर है, हम इसलिए नहीं मानते अपितु मानते हैं, इसलिए ईश्वर है।

वस्तु के ईश्वर मानने में एक बाधा और आती है, वह बाधा है हम वस्तु को ईश्वर मानते हैं या उसमें विद्यमान रूप को? क्योंकि ईश्वर के दर्शनों की इच्छा से वस्तु में रूप को ही मुख्य मानते हैं, अन्य गुणों का हमारे लिए बहुत महत्त्व नहीं होता। इस मान्यता में जो शंका है, वह यह कि यदि वस्तु को ईश्वर मानते हैं तो समस्त वस्तु मात्र ईश्वर होगी, तब यदि हमारा पत्थर भगवान् है तो ईसाई का, मुसलमान का, या किसी और का पत्थर भी भगवान् मानेंगे। यदि आकृति को भगवान् मानेंगे तो प्रश्न उठेगा कि आकृति विशेष भगवान् है या आकृति सामान्य। आकृति सामान्य भगवान् मानने पर सभी आकृतियाँ भगवान् होंगी, हर आकृति भगवान् होगी। यदि आकृति विशेष को भगवान् मानें तो व्यवहार में ऐसा नहीं पाया जाता। अनेक वस्तुएँ भगवान् के रूप में पूजी जाती हैं और अनेक आकृतियों के रूप में भगवान् देखा जाता है। अत: भगवान् है इसलिए नहीं मानते अपितु मानते हैं इसलिए है।

मूर्ति-पूजा करते समय एक और प्रश्न उपस्थित होता है। हम मूर्ति को भगवान् मानते हैं, उसके दर्शन करने के लिए मन्दिर में जाते हैं। आश्चर्य की बात है कि जिससे मिलने और जिसके दर्शन करने जाते हैं, हम उसके सामने आखें बन्द करके क्यों बैठते या खड़े होते हैं? यदि हम किसी से मिलने किसी के घर जायें और उसके सामने बैठकर आँख बन्द करके कहें कि बन्धु, आपके दर्शनों के लिए आया हूँ तो वह दूसरे व्यक्ति को अवश्य ही मूर्ख कहेगा, परन्तु मूर्ति के सामने सदा हम आँखें बन्द करके बैठना पसन्द करते हैं तो यह और भी अनुचित है। जो वस्तु या व्यक्ति मिल गया उसका ध्यान नहीं किया जाता, ध्यान तो अनुपस्थित का किया जाता है, प्राप्त से तो व्यवहार किया जाता है।

मनुष्य जब भी परमेश्वर का ध्यान या विचार करता है तो दो कार्य उससे स्वाभाविक रूप से होते हैं, एक आँखों का बन्द करना और हाथों का जुड़ना। हाथों का जुड़ना स्तुति का प्रतीक है, हाथों से स्तुति की जाती है। आँख बन्द करना किसका द्योतक है? इसको समझने के लिए हमें जीवन के प्रारम्भ को देखना होगा। जब बालक छोटा होता है तब हम उसे संसार की वस्तुओं से परिचित कराते हैं। बालक धीरे-धीरे वस्तुओं को पहचानने लगता है। हम बार-बार वस्तु को दिखाकर उसका नाम पुकारते हैं। इस आवृत्ति से बालक वस्तु और नाम में सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। फिर उसे वस्तु के दिखने पर नाम और नाम के सुनने पर वस्तु का बोध होता है। वह जब-जब भी नाम सुनता है वस्तु की संभावित उपस्थिति की दिशा में देखता है। यद्यपि ईश्वर नाम की भिन्न-भिन्न वस्तुओं से बालक का परिचय कराया गया होता है, अत: वह उन्हीं नाना पदार्थों को ईश्वर कहता, जानता और मानता है। ईश्वर के इस बाह्य

परिचय के साथ प्रत्येक मनुष्य का ईश्वर के विषय में एक आन्तरिक परिचय होता है जिसके कारण मनुष्य कहीं भी खड़ा हो मस्जिद में, मन्दिर में, चर्च में, गुरुद्वारे में-उसके मन में भगवान् के भाव आते ही उसके हाथ जुड़ जाते हैं और उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं, क्योंकि मनुष्य का आन्तरिक भाव कहता है कि ईश्वर का साक्षात्कार एक आन्तरिक प्रक्रिया है। उसे आन्तरिक दृष्टि से ही देखा जा सकता है, बाह्य चक्षुओं से नहीं। अत: परमेश्वर का ध्यान आते ही हमारी दृष्टि अन्दर की ओर चली जाती है, अत: स्वाभाविक रूप से हमारी आँखें बन्द हो जाती हैं।

इसके अतिरिक्त कोई मानता है कि चेतन प्राणी पशु-पक्षी कीट पतंग आदि जो दिखाई देते हैं, इन सबका केवल शरीर दिखाई देता है, इनके अन्दर विद्यमान जीवात्मा नहीं, अत: आत्मा नहीं होती। कोई भी अपनी या किसी की भी आत्मा को अपनी स्थूल आँखों से नहीं देख सकता, वह केवल अनुमान करता है। मनुष्य जब शरीर में आत्मा को शरीर से भिन्न अनुभव करता है, उस समय उस मनुष्य से पूछें-क्यों भाई, आपने माता-पिता आदि को देखा है? तो सामान्य रूप से शरीर को देखकर वह कहता है-हाँ, देखा है, परन्तु वही व्यक्ति उसके मर जाने पर कहता है कि मेरे माता-पिता मर गये। उससे पूछो फिर यह शरीर कौन है? तो वह कहता है कि जब तक वह चेतन इस शरीर में रहता था तभी तक यह मेरा था, उसके चले जाने पर इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। शरीर में प्रारम्भ से एक ही चेतन रहता है, इसका हमें कैसे बोध होता है? यहाँ पर उसके होने का बोध शरीर के प्रत्यक्ष से नहीं हो रहा है। शरीर और चेतना साथ-साथ हैं, परन्तु शरीर चेतना के बिना न क्रिया कर सकता है, न स्थिर रह सकता है। शरीर से चेतना के पृथक् होते ही शरीर नष्ट होने लगता है। यहीं पर शरीर से भिन्न चेतन की यह पहचान होती है।

इस प्रकार किसी के होने पर किसी बात का होना और किसी बात के न होने पर किसी बात का न होना ही उस पदार्थ के अस्तित्व का प्रमाण है। जीवन के होने पर शरीर में क्रिया का होना, जीवन के समाप्त हो जाने पर उस प्रकार की क्रियाओं का समाप्त हो जाना, यही जीवन का शरीर से भिन्न होना सिद्ध करता है। इस प्रमाण से शरीर में जीवन के होने पर मिलने वाली क्रियायें उसके द्वारा हो रही हैं यह सिद्ध होता है। वह जीवात्मा ही उन क्रियाओं का कर्त्ता होता है।

शरीर ही जीवन और जड़ की भिन्नता को प्रमाणित करता है। शरीर का बनना, उसका जीवित रहना, शरीर का घटना-बढ़ना शरीर के द्वारा क्रियाओं का होना शरीर से भिन्न जीवात्मा के होने का प्रमाण है। इस प्रकार भौतिक पदार्थ जड़ हैं, परन्तु चेतन के संयोग से उनमें क्रिया दिखाई देती हैं। इन सब भौतिक पदार्थों में क्रिया का अभाव होने से ये स्वयं कुछ नहीं कर सकते। जब जड़ होने से ये भौतिक पदार्थ पृथक्-पृथक् कोई क्रिया करने में समर्थ नहीं हैं तो इन सब पदार्थों का संयोग भी किसी क्रिया को उत्पन्न नहीं कर सकता और अपने से भिन्न चैतन्य को उत्पन्न करने का सामर्थ्य इनमें नहीं हो सकता।

शरीर का बने रहना, सक्रिय होना, चेतना के होने का लक्षण है। अन्य कोई प्रकार चेतना के जानने-पहचानने का हो नहीं सकता। बहुत सारे शरीरों में यह प्रक्रिया घटते-बढ़ते देखते हैं। अत: शरीर से भिन्न आत्मा की पहचान कर लेते हैं। यह पहचान ईश्वर के साथ नहीं कर पाते, इसके दो कारण हैं, **प्रथम-वह एक है अत: उस जैसा दिखाकर उसे नहीं बताया जा सकता।** बृहदारण्यक उपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य से ईश्वर का स्वरूप पूछते हुए कहा है-तुम ईश्वर को जानते हो तो बताओ वह कहाँ है? महर्षि ने बताया-संसार में जो कुछ हो रहा है उससे ईश्वर के होने का पता चलता है। ऋषि कहते हैं कि यह कोई उत्तर नहीं है कि जो दूध देता वह गाय होती है, जो सवारी कराता है वह घोड़ा होता है। हमें तो प्रत्यक्ष बताओ कि यह ईश्वर है। तो याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं-उसे **इदम् इत्थम्** नहीं बताया जा सकता, क्योंकि वह प्रत्यक्ष नहीं है। **दूसरा-उसकी तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि कोई उस जैसा दूसरा नहीं है।** अत: जो भी उससे भिन्न है उसे यह बताया जा सकता है कि यह ईश्वर नहीं है। इसलिए उपनिषद्कार एक प्रसिद्ध शब्द का प्रयोग करते हैं, ''नेति नेति,'' वह ऐसा नहीं है। ईश्वर के स्वरूप को समझने के लिए यह नकारात्मक प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। हम किसी वस्तु को देखकर यह कह सकते हैं कि यह ईश्वर नहीं है, परन्तु ईश्वर ऐसी वस्तु नहीं जिसे दिखाकर कहा जा सके कि यह ईश्वर है।

शेष भाग अगले अंक में....

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

देहली सभा के श्रीयुत् दिनेश जी ने इन दिनों खुलकर धर्म चर्चा की। कई प्रश्न पूछे। श्री पं. लक्ष्मण जी आर्योपदेशक के साहित्य के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी माँगी। आप पहले ऐसे आर्य साहित्य अनुरागी हैं, जिन्होंने आर्यसमाज के इतिहास के सबसे बड़े साहित्यकारों में से एक श्रद्धेय लक्ष्मण जी के बारे में कुछ जानने की उत्सुकता दिखाई। पं. लेखराम जी, स्वामी दर्शनानन्द जी और उपाध्याय जी सदृश उनके साहित्य में विविधता बहुत है। उन्होंने आज तक का सबसे बड़ा ऋषि जीवन ही नहीं लिखा, राधास्वामी मत पर भी सबसे बड़ा ग्रन्थ लिखा। ऋषि जीवन पर विरोधियों की लिखी गई सब घिनौनी पुस्तकों का उत्तर-प्रत्युत्तर एक ही अनूठे ग्रन्थ निष्कलंक दयानन्द (प्राप्य है) में दिया। इसे पढ़े बिना विरोधियों को निरुत्तर करने की विद्या व कला पर अधिकार नहीं हो सकता। आपने उपाध्याय जी के समान प्रत्येक विषय पर लेखनी चलाई। उनकी विद्वत्ता का वर्णन किन शब्दों में करें?

इन युवकों से कुछ सीखें- कुछ मित्रों को यह भ्रम है कि फेसबुक प्रचार का सबसे बड़ा साधन है। साधन तो यह है, परन्तु **व्यक्तिगत सम्पर्क तथा साहित्य-वितरण** से बढ़कर धर्म-प्रचार का दूसरा कोई साधन नहीं है। इस युग में श्री हरिश्चन्द्र गुरूजी (स्वामी श्रद्धानन्द, महाराष्ट्र) इसका सबसे बड़ा उदाहरण या प्रमाण हैं। उनका स्थान आगे कौन लेगा? प्रश्न हमसे उत्तर माँगता है।

महाराष्ट्र में तो उनका स्थान कौन लेगा- यह बताना कठिन है। महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में पंकज शाह एक कर्मठ, दूरदर्शी, मधुरभाषी, सिद्धान्त प्रेमी, युवकों को खींचने की कला का सिद्धहस्त मिशनरी है। श्री राहुल जी अकोला जैसा विचारशील सहयोगी उनका पूरा साथ देता है।

हरियाणा में अभय आर्य जी-पानीपत, में भी धर्म-प्रचार की आग है। वह दूर-दूर तक ग्रामों में आज की महामारी जातिवाद, अन्धविश्वास, जड़-पूजा, गुरुडम से छुटकारा दिलाने में सदा सक्रिय रहते हैं। आपको अपने पिता जी से स्वाध्याय, साहित्य प्रचार व धर्म-धुन बपौती में मिली है।

हरियाणा में ही देवनगर (महेन्द्रगढ़) ग्राम के कई सुयोग्य, पुरुषार्थी युवक श्री अनिल आर्य, श्री महेन्द्रसिंह, श्री इन्द्रजित् आदि के मार्गदर्शन में ऋषि मिशन का चुपचाप डंका बजाते हुये आगे बढ़ रहे हैं। देश के दूरस्थ क्षेत्रों तथा अमेरिका तक के धर्मानुरागी इनके साथ जुड़कर अनुप्राणित हो रहे हैं। लीडरी से बचकर ये आर्यवीर एक इतिहास रचकर दिखा देंगे। इन्हीं के प्रेमी एक आर्यवीर ने विदेश में बैठे हुए 'महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्पूर्ण जीवन-चरित्र' का स्वदेश की एक प्रादेशिक भाषा में अनुवाद करवाने व छपवाने का सङ्कल्प किया है।

परोपकारिणी सभा अब क्या करेगी?- इस प्रश्न का उत्तर कई बार कई सज्जनों ने पूछा। उत्तर देना सरल नहीं, परन्तु अब इस विषय में कुछ सकारात्मक व उत्साहवर्द्धक उत्तर देने का कुछ अधिकार है। सभा मन्त्री जी ने चलभाष पर नये वर्ष में आर्य जाति में नवजीवन का संचार करने के लिये कुछ विशेष बात की। श्री पं. सत्यानन्द जी वेदवागीश, मान्य डॉ. वेदपाल जी, डॉ. सुरेन्द्र जी, श्री विरजानन्द जी आदि अपने माननीय विद्वानों के आशीर्वाद से एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया जावेगा। इसमें हमारे बहुत से सुयोग्य, कर्मठ, उच्चशिक्षित और समर्पित युवकों ने आगे बढ़कर सहयोग करने और कार्यक्रम को सफल बनाने का दृढ़ निश्चय किया। अगला वर्ष भी हमारे लिये ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इस विषय में अभी इतना ही निवेदन करना ठीक है।

क्या शताब्दी मनाई- स्वामी श्रद्धानन्द संन्यास दीक्षा शताब्दी वर्ष में आर्यजगत् के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। वर्ष भर परोपकारी में थोड़ा-थोड़ा करके इतिहास की लुपत कड़ियाँ विस्मृति की परतों से खोजकर आर्यों के सामने रखी गईं। अभी स्वामी जी के बलिदान पर्व पर मित्रों ने बताया कि परोपकारी में दी गई नई-नई जानकारियों की प्रशंसा तो बहुत सुनने को मिली, परन्तु जो लेख बलिदान पर्व पर पत्रों में छपे हैं, उनमें तो वही चार-छः प्रसंग हैं जो

आर्यसमाजी वक्ता व लेखक दोहराते रहते हैं। आचार्य रामदेव जी के स्तर के लेखक वक्ता कहाँ से लायें?

'गोराशाही की करतूत', स्वामी जी पर ट्रेन में गोरों का आक्रमण, गुरु के बाग मोर्चा में पिंजरे में बन्दी बनाये गये, दण्ड सुनाते समय कोर्ट में भीड़, लाला लाजपतराय के निष्कासन पर स्वामी जी द्वारा चलाये गये आन्दोलन, 'A Revolt in India Feared' पर किसी ने एक पंक्ति नहीं लिखी। सचमुच यह चिन्ता का विषय है।

संन्यास-दीक्षा की विधि पूरी होने पर सबसे पहले महाराज के चरण स्पर्श करके आशीर्वाद पाने वाले दो व्यक्तियों में से एक अंग्रेज़ बालक विशेष रूप से माता-पिता के साथ आया। तार्किक शिरोमणि पं. रामचन्द्र देहलवी के नामलेवा हम आर्यसमाजी यह भी भूल गये।

श्री रामचन्द्र जी के नाम पर- इन्हीं दिनों कुछ भ्रमित भाइयों ने यह रट लगाकर महाराज रामचन्द्र जी का कोई सम्मान नहीं किया कि ''रामचन्द्र जी को सर्दी लग रही है। गर्म कपड़ों का प्रबन्ध किया जाना चाहिये।'' अरे अनजान रामभक्तो! दु:ख-सुख, इच्छा-द्वेष, ज्ञान-प्रयत्न ये जीव के लक्षण हैं। मूर्ति जड़ है, चेतन नहीं। मूर्ति को न सुख और न दु:ख होता देखा गया है। जब प्रतिमा में ज्ञान नहीं, प्रयत्न नहीं, इच्छा नहीं, द्वेष नहीं तो आपने कैसे शोर मचाना आरम्भ कर दिया कि अयोध्या में श्रीराम जी को गर्म वस्त्र चाहिये। राम जी की प्रतिमा ने न तो ऐसा कहा है और न ऐसी माँग की है। यह माँग आपकी है। पूर्वजों का उपहास उड़ाना या उन्हें उपहास का विषय बनाना पाप है। वोट प्रेमियों की कामनायें श्रीराम क्या पूरी करेंगे? उनको तो आपने भक्तों पर निर्भर कर दिया। क्या कह रहे हो-कुछ तो सोचो!

नया बलात्कारी बाबा- अभी पहले वाले भोगी, विलासी और बलात्कारी बाबों की चर्चा समाप्त नहीं हुई थी कि एक और कलङ्की ने स्वयं को कृष्ण अवतार कहकर अनेक कन्याओं को अपनी गोपियाँ बनाकर महाराज कृष्ण का घोर अपमान करके सारे हिन्दू समाज को कलङ्कित कर दिया है। रासलीला, रामलीला रचाने वालों के दुष्कर्मों से सारा हिन्दू समाज लज्जित हो रहा है। इससे भी बड़े दु:ख की बात तो यह है कि स्वयं को हिन्दू जाति के रक्षक व नेता मानने वाले इन कुकृत्यों पर मौन साधे बैठे हैं। क्या ऐसे घर वापसी करवाओगे? कभी हिन्दू समाज की किसी बुराई को दूर करने के लिये कोई आन्दोलन छेड़ा? जो अपने रोग को रोग नहीं मानते उनको तो भगवान् भी नहीं बचा सकता। जेल में सड़ रहे एक बाबा के पाप नंगे होने लगे तो हरियाणा सरकार के कुछ मन्त्री उस बलात्कारी बाबा का गुणकीर्तन करने में लगे थे। दुर्भाग्य का विषय तो यह है कि वोटपंथी सब नेता व पार्टियाँ, धर्म क्या है, और क्या नहीं है, इस पर प्रवचन करने में अपना गौरव मानते हैं। समाज-सुधार के लिये तो संघर्ष करना पड़ता है। बुराई से लड़ाई करके ही युग को पलटा जा सकता है। कई ढोंगियों ने योग की परचून व थोक की दुकानें खोलकर योग से भोग में लिप्त होकर योग-विद्या को ही बदनाम कर दिया है। अधकचरे लड़के योग गुरु बनते-बनते इन बाबों का मार्ग अपना लेते हैं। सामूहिक बलात्कार का कारण जहाँ अश्लील चलचित्र हैं, वहाँ बाबा लोग भी इसका एक कारण मानने पड़ते हैं। देखें, अब अगला बाबा काण्ड कहाँ होता है?

एक प्रश्न का उत्तर- किसी ने लाला लाजपतराय जी के बलिदान पर्व पर, एक महाज्ञानी का लेख पढ़कर कई प्रश्न पूछ लिये। उसे उत्तर देने से इनकार करते हुये कहा, ''ऐसे महाज्ञानियों के लेखों पर कुछ नहीं कह सकता। इन रिसर्च स्कॉलरों से ही समाधान करवायें। विषय का ज्ञान न होने पर आर्यसमाज में आजकल रिसर्च स्कॉलर कहलवाना भी एक फ़ैशन बन गया है। बहुत आग्रह किया तो मैंने एक दो बातों पर संक्षेप से कुछ निवेदन कर दिया। एक महाज्ञानी ने लिखा है कि लाला जी ने श्रीकृष्ण, छत्रपति शिवाजी, ऋषि दयानन्द, मेजिनी, गैरीबाल्डी की आत्मकथायें लिखी हैं। उस भाई को उत्तर देते हुये मैंने कहा, लालाजी किसी की आत्मकथा कैसे लिख सकते हैं? शिवाजी क्या लेखक थे? मेरे पास आओ संस्करण देखकर सच्चाई को जान जाओगे। स्कॉलर का दिल मत तोड़ो। वे सम्पादक भी धन्य हैं जो ऐसे लेख छापने का साहस करते हैं।

फिर पूछा, क्या मालवीय जी लाहौर में साईमन कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शन में लालाजी के साथ थे? उनसे कहा लाजपतनगर दिल्ली में लोक सेवक मण्डल के कार्यालय

जाकर श्री अलगूराय शास्त्री लिखित लालाजी की जीवनी पढ़ने का कष्ट करें। सत्यासत्य का ज्ञान हो जायेगा।''

जातिवाद का महाभयङ्कर रोग- इन्दिरा जी ने 'गरीबी हटाओ' का नारा देकर एक चुनाव जीता। फिर इन्दिरा जी के हाथ पर, 'न जात पर न पात पर' का नया नारा देकर चुनाव जीता। नारे दोनों अच्छे थे, लुभावने थे। न तो कांग्रेस के लम्बे काल के शासन से निर्धनता गई और जातिवाद भी बढ़ता गया। झाड़-फूँक, गाड़ियाँ रोककर कई जातिवादियों ने आरक्षण ले लिया। भाजपा वाले भी वैसी ही मीठी-मीठी बातें कर रहे हैं। चुनाव जीतने के बाद प्रदेशों में लीडर चुनते समय इनके लिये भी जातिवाद को दबाना एक समस्या हो जाती है।

राहुल तिलक लगाकर, कलाई पर लाल डोरा बाँधकर अपने ही लोगों से पण्डित की उपाधि प्राप्त कर मन्दिरों के दर्शन कर रहे हैं। अच्छा होता कि राजसत्ता के लिये संघर्ष करने की बजाय श्री राहुल पण्डित धर्मप्रचार में शक्ति लगाकर सच्चे पण्डित बनें। जातिवाद के विष को दूर करके यश के भागी बनें। वह तो पाटीदारों और दलितों पर अत्याचारों का राग छेड़कर सत्ता की चिन्ता में घुल रहे थे।

नेता एक से एक बढ़कर अपना ज्ञान परोस रहे थे। विराट कोहली ने विवाह किया तो एक भाजपाई ने उसे प्रमाण-पत्र दे दिया कि यह देशभक्त नहीं है, क्योंकि विदेशी भूमि में जाकर विवाह किया। देशभक्ति का लाईसेंस भी अब यह राजनेता देने लगे हैं। राजनेता बड़बोलापन छोड़ अपनी सीमा में ही रहें तो उनका व देश का इसी में भला है। यह रोग बढ़ता ही जा रहा है। लालूजी का निर्णय आने तक नेता क्या-क्या बोलते रहे।

महर्षि के कुछ हस्तलिखित पत्र- डॉ. धर्मवीर जी तथा विरजानन्द जी द्वारा सम्पादित इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक का प्रकाशन परोपकारिणी सभा ने किया। डॉ. वेदपाल जी ने तीन ग्रन्थ पत्र-व्यवहार पर सम्पादित किये हैं। उनका आर्य युवकों व विद्वानों को गम्भीर अध्ययन करना चाहिये। इस पुस्तक के प्रकाशन में तो अनावश्यक विलम्ब हो गया। डॉ. धर्मवीर जी ने इन पंक्तियों के लेखक से कहा कि आपको इसका विस्तृत प्राक्कथन लिखते हुये महर्षि के इन पत्रों का ही नहीं उनके सम्पूर्ण पत्र-व्यवहार का गहन चिन्तन करके बहुत विस्तार से लिखना है। प्राक्कथन तो लिख दिया, परन्तु जैसा वह चाहते थे, वैसा नहीं लिखा जा सका। कारण, ग्रन्थ प्रेस में था। समय थोड़ा था। जो मन में था, वह मन में ही रह गया।

हमारे इन दोनों विद्वानों का श्रम वन्दनीय है। ऋषि के पत्र-व्यवहार के संग्रह करने तथा संग्रहीत कर इसे तैयार करने में इनके श्रम तथा साधना का मूल्याङ्कन हर कोई नहीं कर सकता। कई पत्र पहली बार ही प्रकाश में आये हैं। पृष्ठ ६९ पर प्रकाशित पत्र इतिहास शास्त्र के लिये कितना महत्त्वपूर्ण है, इसे हर कोई नहीं समझ सकता। यह पत्र ऋषि जीवन पर एक नया प्रकाश डालता है। धर्मवीर जी इसे कहाँ से लाये, न यह बताकर गये और न ही कुछ लिखकर गये। कहा, इन सब पर आप ही लिखेंगे। लिखने का समय आया तो आप चल दिये। विरजानन्द जी को भी पता नहीं कि यह अमूल्य निधि कहाँ से मिली।

हमारे लिये यह गौरव की बात है कि यह पत्र इस समय सभा के पास सुरक्षित है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है कि मेरे साहित्य में कुछ राजनीति न खोजें। उन्होंने यह बल देकर लिखा है। ऋषिवर के प्रत्येक दूसरे-तीसरे पत्र में देश व जाति के उत्थान की, हित की और पीड़ा की बात आती है। इस संग्रह में अन्तिम पत्र श्रद्धाराम जी फिल्लौरी का है। यह अस्थान पर छपा है। यह कुम्भ मेले के पश्चात् सन् १८८१ के आरम्भिक महीनों में लिखा गया। यह अन्तः साक्षी से पता चलता है।

आर्यो! ऋषि के पत्रों में, साहित्य में श्रद्धाराम जी के बारे में एक भी शब्द नहीं मिलेगा, परन्तु श्रद्धाराम एक लम्बे समय तक (तीन वर्ष तक) ऋषि विरोधियों का प्रधान सेनापति था और मृत्यु से पहले ऋषि का गुण-कीर्तन करते हुये संसार से गया। अपने किये पर, अपने अतीत पर अश्रुपात करता है। इसी पत्र के आधार पर श्रद्धाराम जी के जीवन के नये मोड़ या पश्चात्ताप पर पहली बार हमने ऋषि जीवन में इसकी चर्चा की। इस पत्र-व्यवहार का गम्भीर अध्ययन करने की, इसकी कथा की परिपाटी समाजों में आरम्भ करनी चाहिये। देश के किसी सुधारक विचारक के पत्र-व्यवहार में किसी

क्रान्तिकारी का एक भी पत्र नहीं। ऋषि जी के पत्र-व्यवहार में ऐसे कई महत्त्वपूर्ण पत्र हैं। भुज कच्छ के अवयस्क राजा विषयक एक गुप्त पत्र जो रानाडे और श्रीयुत् गोपालहरि देशमुख को भेजा गया (डाक से नहीं) था, उस जैसा कोई पत्र किसी भी तत्कालीन नेता ने किसी को नहीं लिखा।

आचार्य रामदेव जी, पं. चमूपति जी के ऋषि के पत्र-व्यवहार पर छपे लम्बे-लम्बे लेखों को पढ़ने का सौभाग्य इस समय केवल इस सेवक को ही प्राप्त है। यदि पूज्य पं. सत्यानन्द जी, डॉ. वेदपाल जी तथा माननीय तपेन्द्र जी उद्यम करके ऋषि के पत्र-व्यवहार के प्रचार का, कथाओं का आन्दोलन छेड़े तो आर्य जाति और देश का बहुत हित होगा। ऋषि के पत्र-व्यवहार पर एक ५०० पृष्ठों का ग्रन्थ लिखने का मन इस विनीत ने भी बनाया है। जीवन की साँझ में क्या-क्या कर पाता हूँ यह तो सर्वज्ञ परमात्मा ही जानता है।

एक शंका का समाधान- 'स्वस्ति पन्था' मासिक में स्वामी सोमदेव जी पर प्रकाशित लेख को पढ़कर किसी गुरुकुलीय शास्त्री जी ने अपनी शंका का समाधान चाहा है। इस लेख के अनुसार स्वामी सोमदेव जी (रामप्रसाद बिस्मिल के गुरु) का निधन सन् १९२९ ई. में हुआ। वह पूछते हैं कि क्या यह सत्य है? यदि सत्य है तो इसका कुछ प्रमाण चाहिये। प्रश्नकर्त्ता का प्रश्न उत्तर योग्य है। सन् १९२९ के आर्यसामाजिक पत्रों में स्वामी जी के निधन की खोज करने पर भी कोई समाचार नहीं मिला। श्री रामप्रसाद ने भी उनके निधन की चर्चा की है, सो १९२९ में उनके निधन वाला कथन मनगढ़न्त है। वैसे यौवन के जोश व अनुभवहीनता के कारण रामप्रसाद जी ने भी कुछ एक बातें बिना जाँच-पड़ताल के आत्मकथा में लिख दीं, यथा स्वामी सोमदेव जी लाहौर में जन्मे।

पूज्य महाशय कृष्ण जी ने मेरे नाम लिखे पत्र में तथा 'प्रताप' में मेरा लेख पढ़कर अपने एक सम्पादकीय में भी यह लिखा कि स्वामी सोमदेव मेरे लंगोटिये मित्र थे और हम दोनों ही वज़ीराबाद में जन्मे थे। उनके आरम्भिक काल के दो लेख मैंने खोज निकाले। दोनों में उनके नाम के साथ स्पष्ट रूप से '**वजीराबादी**' शब्द छपा मिलता है। उनके जन्म का वर्ष अनुमान प्रमाण से 'सन् १८८१' इन पंक्तियों के लेखक ने ही निर्धारित किया। वह महाशय जी के लंगोटिये थे सो उनके जन्म-वर्ष से एक वर्ष बड़े-छोटे भी हो सकते हैं। मेरे लेख को प्रमाण मानकर उनके जीवन पर कुछ प्रामाणिक लिखने वालों का धन्यवाद। भ्रान्ति-निवारण करने के लिये संक्षेप से यह लिखा है।

योग-एकेश्वरवाद और मूर्ति-पूजा- कुछ वर्षों से सरकार ने तथा कुछ बाबों ने योग की देश-विदेश में बहुत चर्चा की है। कुछ सरकारी और गैरसरकारी सूत्र तो योग-आसनों को ही योग विद्या मानने लग गये हैं। जो भी दो-चार आसन करने में सक्षम है वह अपने आपको योगी मानने लग पड़ा। ध्यान लगाने का शोर मचाने वाले गढ़-गढ़ कर मूर्तिया लगा रहे हैं। मूर्ति-पूजा को ही उपासना व ईश्वर-भक्ति मानते हैं। शास्त्र ध्यान की परिभाषा ही कुछ और करते हैं। जब मन को विषयों से हटा लिया जावे तो उस अवस्था का नाम ध्यान है।

योग-विद्या में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हुये उसे एक सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सच्चिदानन्द माना जाता है। फ़ैशन से योगी बनने वाले और राजनीति के रसिया महानुभाव हर कंकर को शंकर मानकर, नदी, नालों और पेड़ों तक को मुक्तिदाता मानकर पूजा करने वाले, मूर्तियों को भोग लगाने वाले तो स्पष्ट रूप से असंख्य भगवानों को मानने वाले हैं। इनकी योग विद्या भी सत्य और प्रतिमा पूजन भी सत्य! तो क्या वेद, शास्त्र व पतञ्जलि ऋषि को मानें या नहीं? आर्यसमाज के लिये यह आनन्ददायक समाचार है। पं. लेखराम वैदिक मिशन के परमोत्साही सुयोग्य आर्य युवक स्वयंस्फूर्ति से नये-नये ठोस कार्य करते हुये नया इतिहास रच रहे हैं। देवनगर (महेन्द्रगढ़) के हमारे कर्मठ आर्य युवक ने हमें एक ऐतिहासिक दुर्लभ (document) दस्तावेज भेजकर आर्यसमाज की शान को चार चाँद लगा दिये हैं। इस Document की खोज श्री राहुल जी और उनके साथियों के पुरुषार्थ का चमत्कार है।

इस सामग्री के छपने तक परोपकारी के इसी स्तम्भ में विदेशों में धर्मप्रचार करके आर्यसमाज की धूम मचाने वाले दो आर्यवीरों जेन्दाराम व सिद्धूराम पर हमारी टिप्पणी पढ़ चुके होंगे। उसमें लिखा गया है कि सन् १८९३ में

अमेरिका गये इन दो मिशनरियों के प्रताप से अमरीका के एक प्रकाशक ने पं. गुरुदत्त जी के उपनिषद् छापे थे। अब हमारे इन आर्यवीरों ने अमेरिका से प्रकाशित आर्यसमाज की सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक ' The New light of Asia' हमें खोज कर भेजी है। यह सन् १८९३ में वहाँ जाते ही इन दो आर्यों ने The Aryasamaj A Vedic Church पुस्तक छपवा कर हलचल पैदा कर दी। लेखक श्री लाला गणेशीलाल F.A.S. सूझबूझ वाले आर्य हैं। सम्भवत: वह भी पंजाब से। वैसे Sunday Magazine में प्रकाशित सन् १८७८ में प्रकाशित ऋषि पर छपा लम्बा ऐतिहासिक लेख भी एक महत्त्वपूर्ण घटना रही।

इन पंक्तियों के लेखक ने आर्यसमाज का पहला शास्त्रार्थ महारथी, आर्यसमाज का प्रथम हुतात्मा, आर्यसमाज का पहला वेदज्ञ, आर्यसमाज की पहली अग्नि परीक्षा, ऋषि के बाद पहला हुतात्मा, आर्यसमाजियों का पहला सामाजिक बहिष्कार, विश्व में किसी संस्था की पहली महिला प्रधान, भारत का पहला अन्तरजातीय विवाह, पिंजरे में बन्दी बनाया गया पहला नेता जैसे अनेक लेख लिखे हैं। अमेरिका में प्रकाशित हमारी प्रथम पुस्तक की खोज करने वाले आर्यो की उपलब्धि पर मैं सब आर्यो को बधाई देता हूँ। शिकागो आर्यसमाज को हार्दिक बधाई स्वीकार हो। अच्छा हो दूसरी बार भी यह शिकागो से ही छपे।

पं. लेखराम जी के १२५वें बलिदान पर

उनके द्वारा लिखित ऋषि जीवन चरित्र 'कुलियात आर्य मुसाफिर' का प्रकाशन

माननीय डॉ. धर्मवीर जी के मस्तिष्क में करने योग्य कई ठोस कार्य थे। देशभर के कई उत्साही आर्य सज्जनों व सुयोग्य कार्यकर्त्ताओं की प्रबल इच्छा का आदर करते हुए आपने अमर धर्मवीर पं. लेखराम के साहित्य 'कुल्लियात आर्य मुसाफिर' ग्रन्थ रत्न के प्रकाशन का मन बनाकर श्री राजेन्द्र जिज्ञासु जी को नये सिरे से उसका सम्पादन करने का अति कठिन कार्य सौंप दिया। इस करणीय कार्य में रुचि लेने वालों का यह कहना रहा कि जिज्ञासु जी के जीवनकाल में यह ग्रन्थ छप जाना चाहिये। उर्दू फ़ारसी के अनेक बोझिल शब्द जो अनुवाद में रह गये, उनको भी अनुदित करना अत्यावश्यक है। यह कार्य और किसी के बस का है नहीं। ५०० पृष्ठों के बड़े आकार का पहला भाग धर्मवीर जी ने कम्प्यूटरकार श्री महेन्द्रसिंह आर्य को भिजवा दिया।

कार्य अभी आरम्भ ही नहीं हुआ था कि श्री धर्मवीर जी चल बसे। उनकी अन्तिम इच्छा को हमीं को पूरा करना है। लाखों रुपये इस पर व्यय होंगे। मेरी भी इच्छा है कि मेरे जीते जी यह कार्य हो जावे। मैंने जिज्ञासु जी से कह दिया है कि दूसरे भाग को भी ठीक-ठाक करके उसका भी पठनीय प्राक्कथन लिख दें। पं. लेखराम जी के साहित्य के इस समय हमारे पास एकमात्र अधिकारी विद्वान् वही हैं। महेन्द्र जी ने कार्य आरम्भ कर दिया है। सभा का गौरव इसी में है कि पं. लेखराम जी के १२५वें बलिदान महोत्सव तक हम इस ग्रन्थ रत्न को आर्यजनता को भेंट कर सकें।

जो भाई एक लाख रुपया देकर इस कार्य में सहयोगी बनेंगे, उनका चित्र पुस्तक में छपेगा। ग्यारह सहस्र या इससे अधिक देने वाले दानदाताओं का नाम आदर सहित ग्रन्थ में छपेगा। आर्यजनता उदार हृदय से परोपकारिणी सभा को इस ऐतिहासिक कार्य के लिये आर्थिक सहयोग करेगी, ऐसा मुझे विश्वास है।

आर्य भाई-बहिनों को यह समझ लेना चाहिये कि इस श्रेष्ठ कार्य में सहयोगी बनकर आप पं. लेखराम जी का ही नहीं, स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज, श्री लक्ष्मण आर्योपदेशक, महाशय चिरञ्जीलाल जी 'प्रेम', पं. देवप्रकाश जी, ठाकुर अमरसिंह जी, पं. शान्तिप्रकाश जी तथा धर्मवीर जी आर्य आदि अपने सब पूज्य महानुभावों के तर्पण का पुण्य कमायेंगे, जिन्होंने पं. लेखराम जी के मिशन के लिये आजीवन सतत साधना की।

ओम मुनि
मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

ऐतिहासिक कलम....

वायुमण्डल

पं. गुरुदत्त विद्यार्थी

मधु चाहे एक बूंद हो या भण्डार, उसकी मधुरता समान ही रहती है, अन्तर केवल इतना होता है कि भण्डार को प्राप्त करके तृप्ति हो जाती है और एक बून्द की मिठास लेकर और अधिक प्राप्त करने की इच्छा जाग जाती है। वेद की ऐसी ही एक बूंद को 'पं. गुरुदत्त विद्यार्थी' ने इस छोटे से ट्रैक्ट में परोसा है। यह ट्रैक्ट सन् १८९५ में लखनऊ से प्रकाशित हुआ था। इसकी भूमिका को पढ़कर लगा कि भूमिका को पुस्तक से अलग करना एक अपराध होगा, इसलिये ट्रैक्ट को भूमिका सहित दिया जा रहा है। आशा है पाठक इससे वेद पढ़ने में प्रवृत्त होंगे। - **सम्पादक**

भूमिका- पाठकगण! यह कुछ परमात्मा ने संसार में ऐसा नियम स्थित कर दिया है कि बहुमूल्य तथा अद्भुत हर्षप्रद सुगन्धादिक पदार्थ स्वल्पकाल ही स्थित रहते हैं और पुनः वायुमण्डल में प्रवेश कर अदृश्य हो केवल अपना गुणमात्र चित्त में छोड़ जाते हैं। दृष्टान्त मात्र के लिये कर्पूर पर दृष्टि कीजिये कि कैसे शीघ्र वायुमण्डल में संयुक्त हो दृष्टिबाह्य हो जाता है। जगत्पिता का यह नियम भी अत्यन्त गूढ़ है, अन्यथा उन पदार्थों की अन्य पदार्थवत् अवज्ञा हो जावे। यह नियम केवल जड़ वस्तुओं पर ही निर्भर नहीं है, किन्तु जड़ पदार्थों से चैतन्य जीवादि तक विस्तृत है अन्यथा क्या कारण है कि वेद-विद्या को जीर्णज्वर से वेद-भाष्यरूपी औषधि दे धन्वन्तरिवत् वैद्य और दीन भारत के तरणी, अविद्या के अगाध भँवर से उद्धारकारक, विद्वत् चूड़ामणि, जगत्गुरु परिव्राट श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज का स्वल्पकाल में वियोग हो जाता। सत्य है, दामिनी की दमक यदि चिरकाल तक स्थित रहे तो उसमें तथा भौतिक अग्नि में अन्तर ही क्या? यदि वायु में कर्पूर सुगन्ध पूरित कर पुनः अदृश्य न हो जाये तो उसका गौरव ही क्या? दर्शन पश्चात् वियोग न हो तो दर्शन में सुख ही क्या? इस उपरोक्त वाक्य का दृष्टान्त श्रीयुत् पण्डित गुरुदत्त जी एम.ए. के चरित्र में और भी दृढ़ होता है। भारत की विद्वत्मण्डली में आज कौन ऐसा पुरुष है जो इस सत्पुरुष के शान्त स्वभाव, चमत्कृत बुद्धि-उद्योग, सहनशीलता और असाधारण विद्वत्ता से परिचित न हो, किसको प्रकट नहीं है कि उस सत्पुरुष महात्मा ने यह असाधारण विज्ञान स्वल्पावस्था में ही दैवीशक्ति के द्वारा प्राप्त कर लिया था? अपने देशहित मनोरथ साधन में, अपने बहुमूल्य जीवन को धर्मरक्षा के हेतु श्रम के हुताशन में आहूत कर स्वल्पावस्था ही में परलोक यात्रा कर अपनी सत्कीर्ति की सुगन्ध भारतवर्ष में ही नहीं किन्तु समस्त धरामण्डल के वायुमण्डल में विस्तृत कर दी और हमारे मार्गदर्शन के लिये दृष्टान्त बन गये, क्योंकि बुद्धिमानों के वचन भी हैं कि-

" Lives of greatmen all remind us, we can make our lives sublime."

अर्थात् सत्पुरुषों के आचरण का अनुकरण कर हम अपनी जीवन-दशा सुधार सकते हैं। अस्तु! आज यह विचार कि उनके चमत्कृत बुद्धियन्त्र द्वारा वेदादि सत्य शास्त्रों से अन्वेषण हुए The Atmosphere नामक प्रबन्ध को अपने भाषाप्रिय भारतबन्धुओं के सन्मुख भाषानुवाद रूपी वायुमण्डल को भेंट धर कृतज्ञता प्रकट करूं और साधारण सभ्यों के कर्णपथ पर उनके गूढ़ वैज्ञानिक सिद्धान्तों का समाचार दूँ। लेखक के बुद्धयनुसार ही उसके अनुवादक की विद्या होना अभीष्ट है, परन्तु यहाँ उसकी समता कहाँ? कहाँ वह सूर्य और कहाँ यह खद्योत, तथापि केवल अपने हितैषी श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी की आज्ञोल्लङ्घन अनुचित समझ, जिन्होंने मुझे इस कार्यार्थ अनुशासन किया था, अतः अनुवाद किया, आशा है कि त्रुटि की पाठकगण स्वयं पूर्ति कर लेंगे- शमिति।

भवदीय

कृष्ण बलदेव वर्मा

बी.ए.क्लास, केनिंग कॉलेज-लखनऊ

वायवा याहि दर्शते मे सोमा अरंकृताः।
तेषां पाहि श्रुधी हवम्।। ऋ. सू. २ मन्त्र. १।।

परमात्मा की वह असीम दयालुता जो कि उसने अपनी पुत्रवत् चराचर प्रजा के उपयोगी सर्वतोभाव से धरामण्डल में विस्तृत कर रखी है, किसी अन्य पदार्थ द्वारा ऐसे उत्तम और सरल प्रकार से सिद्ध नहीं होती जैसी वायुमण्डल से, जो कि भूतल के तल को चहुँ ओर से साढ़े बारह योजन के ऊँचाई पर्यन्त घेरे हुए है। इस अदृश्य धूम्रवत् पृथ्वी के ढँकने का विशेष गुण उसकी लचक तथा हलकापन है कि जिसके कारण सूक्ष्म से सूक्ष्म धक्के ही में उसमें असंख्य ऊर्मि उठने लगती हैं।

कल्पना करो कि एक स्थान पर एक लौह पुञ्ज स्थिर दशा में पड़ा है, यदि उसमें एक गुरुतर पाहन शिला अथवा लौह गेंद आ टक्कर खावे तो क्या परिणाम होगा? ध्यान देने से दृष्टिगोचर होगा कि कठिनता से लौह पुञ्ज में गतिमान् पाहन शिला की टक्कर द्वारा गति का प्रवेश होता है और आलसी पुरुष के कार्यवत् धीरे-धीरे लौह पुञ्ज इधर-उधर हिलने लगता है, वायुमण्डल के प्रभाव से उसकी भूत तथा वर्तमान दशा में एक अद्भुत विरोध का प्रादुर्भाव होता है। इधर वायुमण्डल का प्रत्येक परमाणु भी अपनी लचक तथा हल्केपन के गुण द्वारा जब किसी बाह्यशक्ति से धक्का खाता है तो प्रत्येक परमाणु में गति का प्रवेश होता है और उसका विस्तार कलाशक्ति सम एक परमाणु के अपने सन्निकट और उससे दूसरे तथा दूसरे से तीसरे में धक्का खाने से वायुमण्डल के स्वतन्त्र मार्ग में जब तक कि वह और नये परमाणुओं से जो विपरीत मार्ग में आ रहे हैं समभाव हो कट न जावे, बढ़ता ही चला जाता है। अगले परमाणु में जब पिछले का धक्का लगता है तो दूतवत् वह तुरन्त अपने गति-कार्य पर प्रस्तुत हो चल देता है और इसी प्रकार और अगले परमाणुओं की गति को जानो। निमेष मात्र ही में वायुसागर में मीलों पर्यन्त अद्भुत रमणीय ऊर्मि उर्मित हो जाती है। अस्तु! विचार कर देखिये कि वायु-परमाणु कैसे सूक्ष्म, कोमल और गतिवान् हैं कि पक्षी के पक्षों की सूक्ष्मगति और शब्दहीन श्वास प्रवाह के वेग मात्र ही से उनके अवकाश में प्रबल ऊर्मि उत्पन्न हो जाती हैं।

झिझक मात्र में वायुमण्डल को इस शक्ति द्वारा प्रबल वेग उत्पन्न हो जाता है। उस अवस्था में वायुमण्डल के रूपहीन परमाणुओं के समूह का डौल एक अकथनीय अद्भुत सौंदर्य का दृष्टान्त है। जिसके विषय में अंग्रेजी कवि इमरसन (Emerson) के पद्य का भाषान्तर यह है कि-

वायु चक्र में दण्ड जो तुम घुमावौ
वदै डांड नौका जो जल में चलावौ
बहुत रूप अद्भुत तहाँ दृष्टि आवैं
उभय ऊर्मि तह गान अद्भुत सुनावैं

वायु के ही गतिवान् पक्षों पर आरूढ़ हो पुष्पों की सुगन्धि तथा अन्य सुगन्धित रसों की सुवास और अन्यान्य पदार्थों के गंधमय परमाणु दूर-दूर तक विस्तृत हो जाकर उस विस्तार को उत्पन्न करते हैं कि जो गति को समान तथा समवायु बना देता है-

पाठकगण! विचारिये, वर्तमान समय के साइंसाभिमानी पुरुषों द्वारा प्रचारित 'Air' (एयर) शब्द से-जो रूढ़ि, निरर्थक और अयुक्ति शब्द है, उपरोक्त मन्त्र का वायु शब्द-जो स्वयं अपनी परिभाषा प्रकट करता है अर्थात् वह गतिवान्, लचकवान्, गंधसोपान् अरूप्य और सूक्ष्म है, जगत् नियन्ता की असीम शक्ति का प्रबोधक क्या उत्तम शब्द नहीं है?

वायुमण्डल के संयोगिक परमाणुओं के प्राकृतिक गुणों को निरीक्षण करने के उपरान्त विचारणीय विषय है कि गुणों के द्वारा संसार में और क्या-क्या दृश्य दर्शित होते हैं। सूर्य की रश्मि धरामण्डल के अंक में पड़कर उसके धरातल को उष्ण कर देती हैं और उस उष्णता से धरातल का समीपवर्त्ती वायु सूक्ष्म हो जाता है। यह स्वतः सिद्ध है कि गुरु पदार्थ सदैव ऊपर से नीचे गिरता है और हलका सदैव ऊपर रहता है, यथा जल, तैल। अस्तु, उष्णता से सूक्ष्म हो वायु का प्रथम तल ऊपर जाता है और उसके स्थान में ऊपर का गुरुतर वायु पुनः उष्ण धरातल के संयोग में आ इसी प्रकार उष्णता से सूक्ष्म हो ऊपर जाता है इसी क्रम से शनैः-शनैः बृहत् विभाग वायुमण्डल का उष्ण हो जाता है। इस प्रकार उष्णता प्रचण्ड रूप में विस्तृत हो जाती है और वायुमण्डल में प्रवाह उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण से ईशान तथा आग्नेय कोण की ओर से भूमध्यरेखा की ओर उन वायुओं का संचालन होता है जिन्हें व्यापारिक

वायु अथवा Trade Wind -ट्रेड विंड कहते हैं और उनकी उत्पत्ति का कारण यह है कि भूमध्य रेखा पर स्थित देशों पर सूर्य की किरणें सीधी तथा अधिक समय तक पड़ने से वहाँ उष्णता अधिक होती है, इस कारण वहाँ की वायु उष्णता के कारण फैल जाती है और इस प्रकार हल्की हो ऊपर को उठती है तब उस स्थान-पूर्ति के लिये विषुवत् वृत्त की ओर कर्क तथा मकर रेखा के देशों से-जो उत्तर तथा दक्षिण की ओर हैं-वायु आती है, परन्तु विषुवत् वृत्त पर पृथ्वी की गति का वेग अत्यन्त अधिक होने से उन वायुओं की गति परिवर्त्तित हो जाती है और उत्तर की ओर उत्तर-पूर्व कोण ईशान से तथा दक्षिण की ओर दक्षिण-पूर्व कोण आग्नेय से वायु वेग प्रकट होता है। अस्तु, यहाँ पर प्रथम यह बात सिद्ध है कि वायु सदैव गति अवस्था में रहती है और प्रवाह को उत्पन्न करती है, जो स्वयं एक नियत गति दशा में है। यह मन्त्र के द्वितीय शब्द '**याहि**' से दर्शित होता है कि वायु सदैव प्रवाहरूप में संचालन करता है-

अब विचारणीय स्थल यह है कि प्रकाश पर वायु के गुणों का क्या प्रभाव होता है?

प्रकाश की रश्मि जो सूर्य लोक से चल अन्य प्रकाशित तारामण्डलों द्वारा होती हुई वायु के सूक्ष्म रूप पर ''जो कि अत्यन्त ऊँचे पर आकाश के अवकाश में विस्तृत हो रही है'' पड़ती हैं, उस समय उनकी गति में अन्तर हो जाता है-

प्रथम शून्य से जब वह वायु में प्रवेश करता है तो उन्हें एक स्थूल मार्ग में चलना पड़ता है, इस कारण उनकी गति वक्र हो जाती है। पुनः ज्यों-ज्यों नीचे आते जाते हैं, उतना ही वायु स्थावर और स्थूल होता जाता है, इस कारण प्रतिस्थान पर आकाश की किरणों का मार्ग परिवर्तित होता जाता है। यदि वायुमण्डल एकसम प्रति स्थान पर स्थूल होता और उष्ण, शीत गुण का भी समवाय होता तो केवल उस स्थान की वक्रता को छोड़ जहाँ वह प्रथम शून्य से वायुमण्डल में आई थी, सरल रेखा ही में उनकी गति होती, परन्तु शीतोष्ण गुण तथा स्थूलता की विषमता से उसका मार्ग वक्र ही वक्र भिन्न-भिन्न दिशाओं में कुटिल गति से होता चला जाता है, जब तक कि वह भूमितल पर आ टक्कर नहीं खातीं और चक्षु से समीलन नहीं करती। दृष्टि का विस्तार इस प्रकार अद्भुत रूप में बढ़ाती है।

मृगतृष्णा का आश्चर्यजनक दृश्य भी, जो बहुधा पथिकजन मरुस्थल में देखते हैं और प्रेत बाधा व छल जान भयभीत होते हैं, केवल प्रकाश द्वारा नाना स्थलों का उष्ण वायुमण्डल के भिन्न-भिन्न स्थूल विभागों में प्रतिबिम्ब पड़ने का फल है। यह केवल वायु का ही प्रभाव है कि हम प्रकाशपुंज सूर्यमण्डल के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न पदार्थों तथा दिशाओं को दृष्टि द्वारा देख सकते हैं। वायुमण्डल इस प्रकार दृष्टि की सीमा का विस्तार करता हुआ मृगतृष्णादि अद्भुत दृश्य दिखाता है। यहाँ ही से प्रकट है कि प्रवाह उत्पन्न करने और नियत दिशाओं की ओर नियतपर्यन्त चलने के अतिरिक्त उसमें ये दो उपरोक्त गुण और अधिक हैं।

इसी हेतु वैदिक मन्त्र का तीसरा शब्द '**दर्शते**' अर्थात् वायु दृष्टि के लिये आवश्यक है, सार्थक सिद्ध होता है। सबसे उच्चतम तथा उपयोगी वायुमण्डल का गुण और लाभ धरामण्डल में वनस्पति को जीवित रखता है। वायुमण्डल में सदैव Carbonic Acid (Co_2) 'कार्बोनिक एसिड' अर्थात् अग्निज वायु इस अंश में उपस्थित रहता है कि कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो पर जीवधारियों तथा वनस्पतियों के जीवनार्थ समान सम्बन्ध स्थित रख सके। वृक्ष तथा लतायें, जिनमें गुरुतर विभाग और अंश कोयले का, जिसे Carbon कार्बन कहते हैं रहता है, यह अंश वायुमण्डल ही से खींचते हैं।

वृक्षों की पत्तियों में एक ऐसी शक्ति है कि जिसे अंग्रेजी भाषा में Chlorophyll 'क्लोरोफिल' कहते हैं कि वह प्रकाश में वायुमण्डल के भिन्न-भिन्न अंशों से Carbonic Acid 'कार्बोनिक एसिड' अर्थात् अग्नि वायु को पृथक् कर लेते हैं और उस Co_2 में से कार्बन अर्थात् कोयले के परमाणुओं को अपने में आकर्षित करके Oxygen 'ऑक्सीजन' अर्थात् प्राणपद वायु को बाहर ही छोड़ देते हैं-और वह प्राणपद वायु जीवधारियों के जीवनार्थ उपयोगी होती है, क्योंकि जीवधारियों का जीवन केवल उसी उष्णता पर निर्भर है जो उनके उदर में शारीरिक कार्बन Carbon अर्थात् कोयले के परमाणुओं का Oxy-

gen 'ऑक्सीजन' अर्थात् प्राणपद वायु से सम्मिलित दाह में उत्पन्न हो अग्निज वायु Carbonic Acid Co_2 'कार्बोनिक एसिड' बनाती है-जिसे वह श्वास क्रिया में बाहर निकाल देते हैं। इस प्रकार देखने में आता है कि जीवधारी मात्र प्राणपद वायु शोषण करते और अग्निज वायु श्वास द्वारा बाहर निकालते और समस्त वनस्पति उसमें से कोयले के परमाणुओं को शोषण कर पुनः शुद्ध प्राणपद वायु जीवधारियों के हेतु छोड़ देते और जीवधारी वनस्पति को खाते, जिससे उनके कोयले के परमाणुओं की न्यूनता की पुनः पूर्त्ति हो जाती है। वायुमण्डल इस प्रकार जीव, जन्तु तथा वनस्पति के बीच एक प्रकार का समान सम्बन्ध स्थित रखने का यन्त्र है और उनके जीवन का हेतु भी है। केवल यही नहीं, किन्तु उभय जाति की गति, समान संचारक का हेतु भी वायु ही है-

'सोमा' शब्द-जिसका प्रयोग इस मन्त्र में है-का अर्थ है कि वह वस्तु जो पृथ्वी तल से उगे और विशेषकर वनस्पति का प्रतिपादक है जिसकी उपज सर्वतोभाव धरती ही पर निर्भर है। अस्तु, वायु के उपरोक्त गुण द्वारा ही यह वैदिक वाक्य सिद्ध होता है कि **''सोमा अरंकृताः तेषां पाहि।।''**

जिसका भाषार्थ यह है कि वायुमण्डल वनस्पति को भोजन देता तथा जीव-जन्तु और वनस्पतियों में समवाय सम्बन्ध स्थित रखता है। वायु का एक गुण यह भी बहुत गुरुतर उपयोगी है कि वह शब्द का वाहन है। बहुधा मनुष्यों का संबोधन भाषणकारी जीव कहकर किया गया और यथार्थ में यह गुण इस जन्तु को अन्य और समस्त जन्तुओं से शिरोमणि बनाता है-

भाषणशक्ति , जिसके द्वारा मनुष्य ने इतनी सभ्यता और उन्नति की है केवल सार्थक शब्दों का समूह ही है, जिनके लाभ से, यदि वायु न होती तो मनुष्य सदैव वंचित रहता और यही वायु का गुण 'शब्दवाहन' मन्त्र के अन्तिम शब्दों **'श्रुधीहवम्'** में प्रतिपादन किया गया है अर्थात् वह हमारे शब्दों को तथा अन्यान्य शब्दों को दूर तक ले जाता है और उनके सुन पड़ने का हेतु होता है ।। इति।।

पाठकगण अब विचारें कि वैदिक मन्त्रों के प्रति शब्द में कैसे-कैसे गूढ़ सिद्धान्त पदार्थ विद्या के भरे हैं, जिसमें से स्थाली पुलाक न्यायवत् एक यहाँ दिखलाया गया है- हा दुर्भाग्य! आज भारत में कोई उनके गौरव पर दृष्टि न कर मृगजल पाने को भारत-संतान अन्य-अन्य दिशाओं को दौड़ रहे हैं और इस भण्डार को नहीं खोजते-प्यारे मित्रो! चेतो, यदि वैदिक मन्त्रों को ही ध्यानपूर्वक विचार और उनके उद्धार का प्रयत्न करोगे तो समस्त विद्यायें जान लोगे, अन्यथा भटकोगे, कुछ कार्य सफल न होगा। और अन्त में यही बात होगी **''मनमोदक नहिं भूख बुताई''**

एक उत्साहजनक सूचना

पं. सत्यानन्द वेदवागीश जी आर्यसमाज ही नहीं, सम्पूर्ण भारत में शिरोमणि वैदिक विद्वान् हैं। वैदिक वाङ्मय के उनके तलस्पर्शी ज्ञान से सब परिचित ही हैं। साथ ही वे परोपकारिणी सभा के सम्मानित सदस्य भी हैं।

प्रसन्नता का विषय यह है कि पं. सत्यानन्द वेदवागीश जी ने सभा के सदस्यों के आग्रह पर **ऋषि उद्यान अजमेर में रहने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। वे ऋषि उद्यान में रहकर गुरुकुल के विद्यार्थियों एवं जिज्ञासुओं के लिये वेदांगों का अध्यापन प्रारम्भ करेंगे।** अजमेर निवासियों एवं समस्त आर्यजनता के लिये यह एक सुअवसर है कि ऋषि उद्यान में रहकर शास्त्रों का अध्ययन करें। आशा है आर्यजन इस अवसर का लाभ उठायेंगे। परोपकारिणी सभा आचार्यश्री का धन्यवाद ज्ञापित करती है।

परोपकारी के सुधी पाठकों के लिए आवश्यक सूचना

परोपकारी शुल्क भेजते समय नये या पुराने ग्राहक के उल्लेख के साथ-साथ ग्राहक संख्या अवश्य लिखें, अन्यथा शुल्क जमा करने में कठिनाई आती है। फलस्वरूप पाठकों के पास पत्रिका नहीं पहुँच पाती है। ऐसे ही अपना नाम हटवाते व जुड़वाते समय दूरभाष संख्या सहित अपना पूरा विवरण लिखकर भेजें। ई.एम.ओ. के द्वारा शुल्क भेजने वाले ग्राहक भी सन्देश के साथ अपनी ग्राहक संख्या सहित पूरा विवरण भेजें। **परोपकारी पत्रिका कार्यालय से निरन्तर भेजी जाती है, फिर भी जिन लोगों के पास पत्रिका का कोई अंक प्राप्त ना हुआ हो तो कृपया पत्र या दूरभाष द्वारा हमें सूचित करें, ताकि हम वह अंक पुनः भेज सकें, साथ ही अपने डाकघर में इसकी जाँच आदि भी करें।**

धनराशि भेजने हेतु सूचना

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित सभा है एवं उनके कार्यों को आगे बढ़ाने के लिय कृत-संकल्प है। सभा द्वारा ऋषि के स्वप्नानुरूप गुरुकुल, संन्यास एवं वानप्रस्थाश्रम, ध्यान शिविर, वैदिक साहित्य का प्रकाशन, देश में प्रचार, परोपकारी पत्रिका के माध्यम से जन-जागरण, भव्य अतिथिशाला, भोजनशाला आदि अनेक प्रकल्पों का संचालन हो रहा है। ये सभी कार्य आर्यजनों के सात्विक दान से ही होते हैं। अतः दानी महानुभावों से निवेदन है कि वेद, ईश्वर, दयानन्द के इस कार्य में अपना सहयोग अवश्य प्रदान करें।

चैक, ड्राफ्ट, धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा राशि भेजने वाले उन पर '**परोपकारिणी सभा**' अवश्य लिख दें। दानी महानुभाव ऑनलाइन भी राशि जमा करवा सकते हैं। भारतीय स्टेट बैंक में एक सहस्र तक की राशि जमा कराने वाले **२५ रु. बैंक सेवा शुल्क के रूप में अतिरिक्त** जमा करवाने की कृपा करें। कृपया, राशि निम्नांकित बैंकों में ऑनलाइन भिजवाकर, जमा कराई गई स्लिप के साथ उद्देश्य लिखकर सभा कार्यालय को सूचित करवाने का कष्ट करें।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।
IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।
IFSC - SBIN0007959

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं, वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४१

वैचारिक क्रान्ति के लिए सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

प्राणोपासना – ७

बाह्यविषय प्राणायाम

तपेन्द्र वेदालंकार (आई.ए.एस. रिटा.)

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 'ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय' में महर्षि लिखते हैं, ''प्राणानां गयेति संज्ञा प्राणा वै गया इत्युक्तत्वात्। तत्र गयायां श्राद्धं कर्त्तव्यम्, अर्थात् गयाख्येषु प्राणेषु श्रद्धया समाधिविधानेन परमेश्वरप्राप्तावत्यन्तश्रद्धाना जीवा अनुतिष्ठेयुरित्येकं गयाश्राद्धविधानम्। गयान् प्राणान् त्रायते सा गायत्री इत्यभिधीयते।'' ''अत्यन्त श्रद्धा से गया संज्ञक प्राण आदि में (आदि शब्द संस्कृत में नहीं) परमेश्वर की उपासना करने से जीव की मुक्ति हो जाती है।...प्राण का नाम भी गया है, उसको **प्राणायाम की रीति से रोक कर** परमेश्वर की भक्ति के प्रताप से पितर अर्थात् ज्ञानी लोग सब दु:खों से रहित होकर मुक्त हो जाते हैं...।'' महर्षि आगे यास्क मुनि को उद्धृत करते हुए लिखते हैं, ''**सो विष्णुपद गयशिर** अर्थात् प्राणों से परे है, उसको मनुष्य लोग **प्राण में स्थिर होके**, प्राण से प्रिय अर्न्तयामी परमेश्वर को प्राप्त होते हैं, अन्य मार्ग नहीं।'' पिछले लेखों में तथा इस लेख में भी बार-बार प्राणों से सम्बन्धित महर्षि के उद्धरणों को प्रस्तुत किये जाने का उद्देश्य यह है कि साधक को यह बात स्पष्ट हो जावे कि प्राणों में ही उपासना किया जाना अभीष्ट है तथा प्राणों की स्थिरता से आत्मदर्शन हो सकता है, जिसके लिए प्राणायाम का अभ्यास किया जाना आवश्यक है।

प्राणायाम से पूर्व आसन की सिद्धि आवश्यक है। अभ्यासी को स्थिर व सुखपूर्वक आसन के लिए केवल शरीर तक ही सीमित नहीं रहना है बल्कि प्रयत्नशैथिल्य का अभ्यास करके अनन्त आकाश में मन को टिकाकर एकाग्र करके अनन्त समापत्ति करनी है, जिससे शरीर की स्थिरता के साथ-साथ मन भी समाहित होगा, एकाग्र होगा। (प्राणोपासना-४)। **अन्नमयं हि सोम्य मन (छादोग्य उपनिषद्)** मन की शुद्धि के लिए शरीर की शुद्धि आवश्यक है, जिसके लिए अभ्यासी को रसना पर नियन्त्रण करना होगा तथा उचित भोजनादि से तन की शुद्धि के साथ-साथ मन की शुद्धि भी करनी होगी। (प्राणोपासना-५) 'बिना ब्रह्मचर्य का पालन किये, बिना वीर्य रक्षा किये ईश्वर प्राप्ति तो दूर रही, मनुष्य की बुद्धि और ज्ञान भी परिष्कृत और उज्ज्वल नहीं हो सकते'-महर्षि के कथन एवं उपनिषदों के तप-ब्रह्मचर्य-श्रद्धा तथा अन्य उद्धरणों अनुसार शरीर व मन से ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। (प्राणोपासना-६)

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोक्त धर्म विषय में ''आयुश्च रूपं च...चक्षुश्च श्रोत्रं च'' अथर्ववेद के मन्त्र की टीका में महर्षि लिखते हैं, ''**...शुद्धदेशनिवासादिनैनयो: प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां बुद्धि शारीरबलं च सम्पादनीयम्**'' योगाभ्यास, शुद्ध देश में निवास आदि और भीतर से बल करके प्राण को बाहर निकाल के रोकने से शरीर के रोगों को छुड़ा के बुद्धि आदि को बढ़ाओ। उपासना विषय में '**प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य**' योगदर्शन सूत्र का अर्थ करते हुए लिखते हैं, ''**कोष्ठ्यस्य वायोर्नासिकापुटाभ्यां प्रयत्नविशेषाद् वमनं प्रच्छर्दनं विधारणं प्राणायाम:। ताभ्यां वा मनस: स्थितिं सम्पादयेत्। छर्दनं भक्षितान्नवमनवत् प्रयत्नेन शरीरस्थं प्राणं बाह्यदेशं निस्सार्य यथाशक्ति बहिरेव स्तम्भनेन चित्तस्य स्थिरता सम्पादनीया।**'' ''जैसे भोजन के पीछे किसी प्रकार से वमन हो जाता है वैसे ही भीतर के वायु को बाहर निकाल के सुखपूर्वक जितना बन सके उतना बाहर ही रोक दें। पुन: धीरे-धीरे भीतर लेके पुनरपि ऐसे ही करे। इस प्रकार वारंवार अभ्यास करने से प्राण उपासक के वश में हो जाता है और प्राण के स्थिर होने से मन, मन के स्थिर होने से आत्मा भी स्थिर हो जाता है।''

सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में 'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य' सूत्र की ही व्याख्या करते हुए महर्षि प्राणायाम की विधि बताते हैं, ''जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न बाहर निकल जाता है, वैसे प्राण

को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे। जब बाहर निकालना चाहे, तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच के वायु को बाहर फेंक दे। जब तक मूलेन्द्रिय ऊपर खींच रखे, तब तक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो तब धीरे-धीरे भीतर वायु को लेके फिर भी वैसे ही करता जाए, जितना सामर्थ्य व इच्छा हो और मन में ओ३म् का जप करता जाय। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।''

उपरोक्त से स्पष्ट है कि 'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य' योग सूत्र प्राणायाम का आधार है तथा महर्षि के अनुसार बाह्य विषय प्राणायाम=श्वास को बाहर निकाल कर रोकने से रोग छूटते हैं, बुद्धि बढ़ती है, आत्मा व मन की पवित्रता होती है तथा प्राण उपासक के वश में हो जाता है तथा मन व आत्मा भी स्थिर हो जाता है।

महर्षि द्वारा बतायी गयी प्राणायाम की क्रिया को करने से पूर्व कुछ तथ्य साधकों के हितार्थ एवं विचारार्थ प्रस्तुत हैं-

१. जब प्राणी श्वास लेता है तो वायु शरीर में जाती है तथा प्राणनाड़ियों में नीचे की ओर गति होती है, यह अपानन क्रिया है। जब प्राणी प्रश्वास लेता है अर्थात् दूषित वायु बाहर निकालता है तो प्राणनाड़ियों में प्राण की उर्ध्व गति होती है-यह प्राणन क्रिया है। श्वास-प्रश्वास, प्राणन व अपानन क्रियाओं का साधन हैं।

२. हृदय प्राणनाड़ियों का संकुल है तथा जीवात्मा का मुख्यालय है। यह रक्तप्रेषण करने वाला शरीर का अंग नहीं है। स्थूल इन्द्रिय नहीं है। हमारा तन्त्रिका तन्त्र, स्नायु तन्त्र प्राणनाड़ियाँ नहीं हैं, प्राणनाड़ियाँ इनसे भिन्न हैं तथा सूक्ष्म हैं। (प्राणोपासना १,२,३)

३. सामान्यतया जब हम श्वास लेते हैं तो श्वास के साथ पेट थोड़ा बाहर आता है तथा प्रश्वास के समय पेट थोड़ा अन्दर जाता है। यह श्वास लेने की सही प्रक्रिया है। पेट को बिना हिलाए केवल छाती से श्वास-प्रश्वास लेना सहज नहीं है। शिशु जैसे श्वास लेता है-वह प्रक्रिया सहज है। स्वामी सत्यबोध जी महाराज के अनुसार यदि श्वास क्रिया ठीक नहीं है तो कुछ दिन अभ्यास कर साधक को प्रथम इसे ठीक कर लेना चाहिये।

४. प्राणायाम करते समय शरीर या मन में अवाँछित तेजी-चंचलता नहीं होनी चाहिये। प्राणक्रियाएँ बिना जल्दबाजी के सहजतया करनी चाहिये। जल्दी से संख्या पूरी करनी है या ज्यादा संख्या में करने से प्राणायाम की सिद्धि शीघ्र होगी या ज्यादा लाभ होगा-इस तरह के विचार त्याग देने चाहिये।

५. सभी की शारीरिक क्षमता एक समान नहीं होती, अत: प्राणायाम के समय जब श्वास बाहर निकालते हैं या अन्दर लेते हैं तो फेफड़ों की क्षमता से कुछ कम वायु ही बाहर निकालनी है तथा तदनुसार ही अन्दर भरनी है। बहुत जोर लगाकर फेफड़ों को बिल्कुल खाली करने या जबरदस्ती ज्यादा श्वास भरने का प्रयास नहीं करना है। अभ्यास से क्षमता धीरे-धीरे बढ़ती जावेगी। इससे फेफड़ों पर विपरीत प्रभाव भी नहीं पड़ेगा तथा प्राणायाम के लाभ में कमी भी नहीं आवेगी।

६. प्रारम्भिक साधक को कम से कम तीन व अधिक से अधिक २१ प्राणायाम करने चाहिये। प्राणायाम की संख्या को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये। उत्साह के अतिरेक में अधिक संख्या में प्राणायाम करने से लाभ नहीं होगा। यदि साधक २१ प्राणायाम बिना दीर्घ अभ्यास के कर रहा है तो समझ लेना चाहिये कि प्राणायाम की सही प्रक्रिया नहीं अपनाई जा रही।

७. महर्षि ने प्राणायाम करते समय ओ३म् के जप का विधान किया है। आसन से मन की एकाग्रता कुछ हो ही जाती है तत्पश्चात् ओ३म् के जप से मन को एकाग्र रखना है। अनुभव अनुसार एक समय में चिन्तन विषय-जपविषय को बार-बार बदलना ठीक नहीं तथा विषय बदल-बदल कर लम्बा चिन्तन करना भी उपयुक्त नहीं।

८. यदि कोई शारीरिक प्राणायाम करने हैं तो इस 'बाह्य विषय' प्राणायाम से पूर्व कर लें। इसके बाद अन्य कोई प्राणायाम न किया जावे। साधक 'आभ्यन्तर'=अन्त: कुम्भक= अन्दर श्वास रोकने का अभ्यास न करें जब तक कि इस 'बाह्य-विषय' प्राणायाम की सिद्धि न हो जावे। आभ्यन्तर= अन्त: कुम्भक प्रारम्भिक साधक के लिए लाभदायक नहीं है बल्कि अपानन क्रिया होने से हानिकारक

है। कई बार अभ्यासी योगदर्शन में बताये गये सभी प्राणायामों को साथ-साथ ही करते रहते हैं, यह उचित नहीं। इससे किसी प्राणायाम की सिद्धि नहीं हो पायेगी तथा अभ्यासी के मन में अविश्वास तथा अश्रद्धा भी उत्पन्न होने लगेगी। अभ्यासी सोचेगा-इतने वर्षों तक अभ्यास से कुछ उपलब्धि तो हुई नहीं। अतः पहले 'बाह्य-विषय' प्राणायाम का अभ्यास करें। इस प्रकार करने से शास्त्र में बताया लाभ होगा।

९. प्राणायाम करने से पूर्व नासिका के दोनों स्वर सम होने चाहिये। उसके लिए आसन में बैठकर, जिस ओर का स्वर बन्द हो, उस ओर के हाथ की मुट्ठी बन्द करके दूसरे हाथ की बगल में रखकर थोड़ा दबाना है। मुट्ठी बाँधते समय अँगूठा अगुलियों के अन्दर रहेगा तथा बगल में दबाते समय अगुलियाँ ऊपर की ओर रहेंगी। थोड़ी देर दबायें, स्वर न खुले तो पुनः दबायें। यदि विषम जुकाम आदि नहीं है तो बन्द स्वर खुल जावेगा तथा दोनों स्वर चलने लगेंगे। बिना स्वर सम किये प्राणायाम करने का कोई लाभ नहीं होगा। उच्चकोटि साधकों द्वारा यह स्वर सम करने की प्रक्रिया बतायी गयी है। सन्ध्या करने से पूर्व पुराने आर्यसमाजी इस क्रिया से श्वास सम किया करते थे। मेरे पिताजी भी करते थे।

प्राणायाम करने के लिए आसन पर बैठें, स्थिति बनाकर धीरे-धीरे कुछ श्वास ले लें जिससे यदि श्वासों में तेजी हो तो वह समाप्त हो जावे तथा श्वास बिना प्रयास सामान्य चलने लगे। श्वास लेने में कोई श्रम न लगे। तत्पश्चात् बायीं नासिका से धीरे-धीरे अन्दर श्वास लें तथा अन्दर बिना रोके-दायीं नासिका से धीरे-धीरे श्वास बाहर निकाल दें, बाहर भी नहीं रोकें। दायीं नासिका से श्वास लेवे व अन्दर बिना रोके बायीं नासिका से निकाल दें। श्वास न अन्दर रोकना है, न बाहर। जब प्राण क्रिया को समाप्त करें, उस समय बायीं नासिका से ही समाप्त करें, दायीं नासिका से नहीं। तेजी से या झटके से श्वास नहीं लेना-छोड़ना बल्कि धीरे-धीरे लेना व छोड़ना है। स्वामी सत्यबोध जी महाराज अनुसार इससे प्राणनाड़ियों का शुद्धिकरण होता है। वे इस क्रिया को कराते थे तथा अनुभव अनुसार यह बहुत लाभकारी है।[१]

इस क्रिया में हाथ से नाक को नहीं पकड़ना बल्कि विचार से ही-बायें से दायें, दायें से बायें-श्वास लेना व छोड़ना है। महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उल्लेख किया है, ''**बालबुद्धिभिरङ्गुल्यङ्गुष्ठाभ्यां नासिकाछिद्रमवरुध्य यः प्राणायामः क्रियते स खलु शिष्टैस्त्याज्य एवास्ति।**'' ''उन दोनों के आने-जाने को विचार से रोके। नासिका को हाथ से कभी न पकड़े किन्तु ज्ञान से ही उनके रोकने को प्राणायाम कहते हैं।''

'बाह्यविषय' प्राणायाम-प्रच्छर्दन व विधारण की प्रक्रिया महर्षि ने स्पष्ट की है, उसी अनुसार साधक को अभ्यास करना है। सर्वप्रथम श्वास को धीरे-धीरे अन्दर भर लें, मूलेन्द्रिय को ऊपर की ओर खींचे, श्वास को बलपूर्वक बाहर फेंक दे, पेट को पीछे की ओर सिकोड़ते हुए यथाशक्ति श्वास को रोके। जब श्वास अन्दर लेना चाहें तब प्रथम मूलेन्द्रिय को ढीला छोड़े व श्वास को धीरे अन्दर लेवें। श्वास को अन्दर रोकना नहीं है। यह एक आवृत्ति हुई। इस प्रकार तीन आवृत्ति से प्रारम्भ कर सकते हैं। प्रति सप्ताह एक आवृत्ति बढ़ा सकते हैं। फेफड़ों को न तो बिल्कुल खाली करना और न हि हठात् श्वास भरना। बाहर रोकने में भी जबरदस्ती नहीं करनी। धीरे-धीरे अभ्यास से समय बढ़ता जावेगा-सहजतया। यदि जबरदस्ती की जावेगी तो लाभ के बजाय हानि हो जावेगी। यदि साधक को यह विश्वास हो जायेगा कि श्वास-क्रिया व प्राण-क्रिया अलग हैं तो श्वास के साथ जबरदस्ती करना बन्द हो जावेगा। साधक को गर्दन को छाती की ओर झुकाकर कोई बन्ध नहीं लगाना है। गर्दन सीधी सहज रखनी है। पेट को पीछे की ओर खींचकर रखना है, किसी बन्ध को लगाने का यत्न नहीं करना। यह प्राणायाम धड़ में प्राण की उदान वृत्ति के लिए है, गर्दन से ऊपर के हिस्से की वृत्ति के लिए अलग क्रिया है।

मूलेन्द्रिय का संकोच व ढीला छोड़ना इन क्रियाओं का सही तरीके से तथा सही टाइमिंग्स पर करना प्राणायाम की सिद्धि के लिए आवश्यक है। सन् १८८२ में मुबई प्रवास के समय बाबू जनकधारी लाल ने महर्षि से लाभ न होने की बात कही तो महर्षि ने उन्हें प्राणायाम करके दिखाने को कहा तथा बताया, ''जब तुम भीतर की वायु

को बाहर फेंकते हो तो तुम्हारा मूलाधार ऊपर को उठ जाना चाहिये, जो तुमसे नहीं बनता।'' (महर्षि दयानन्द चरित) मूलेन्द्रिय के संकोच का अभ्यास अलग से दिन में एकाधिक बार किया जा सकता है। प्रात: व सायं प्राणायाम करने से पूर्व तो करना ही चाहिये जब तक प्रवीणता प्राप्त न हो।

साधक जब अभ्यास करेगा तो प्रारम्भ में अधिकतर-हाथों में ऊपर की ओर करन्ट सा प्रवाहित होने का अनुभव होगा। कमर से ऊपर शरीर में कहीं-कहीं, किसी-किसी स्थान पर कुछ देर के लिए उक्त प्रवाह जैसा अनुभव हो सकता है। यदि ऐसा होता है तो समझ लें कि अभ्यास सही दिशा में चल रहा है। लेकिन कई बार प्राणायाम करते समय मन की कुछ एकाग्रता न होने से चींटी चलने जैसा अनुभव हो सकता है, वह त्वचा के ऊपर होगा-वह प्राणायाम की सिद्धि की ओर बढ़ने का लक्षण नहीं है।

प्राण में उपासना करके आत्मदर्शन किया जा सकता है। महर्षि द्वारा बताये बाह्य विषय-प्रच्छर्दन विधारण-क्रिया वाले प्राणायाम से प्राण स्थिर होते हैं। प्राणायाम से पूर्व आसन की सिद्धि करनी जरूरी है। प्राणायाम का अभ्यास करते समय आसन में बैठकर प्रथम श्वास सम करने हैं, फिर सहज श्वास लेने हैं, फिर बायें से दायें, दायें से बायें श्वास वाली क्रिया करनी है। तत्पश्चात् बाह्य विषय प्राणायाम की क्रिया विधि अनुसार करनी है। इस प्राणायाम की सिद्धि के लिए श्रद्धापूर्वक वर्षों का अभ्यास करना पड़ सकता है। इसकी सिद्धि सहज नहीं है।

व्याकरण एवं दर्शन के अध्ययन हेतु प्रवेश प्रारम्भ

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी **परोपकारिणी सभा के द्वारा 'महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल' ऋषि उद्यान, अजमेर** में पिछले १८ वर्षों से प्रारम्भिक संस्कृत ज्ञान, पाणिनीय व्याकरण और दर्शनों के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। अत: व्याकरण एवं दर्शन पढ़ने के इच्छुक विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।

इस काल में ऋषि उद्यान में प्रतिदिन यज्ञोपरान्त उपदेश व प्रवचन का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा। समय-समय पर विविध विषयों पर विद्वानों द्वारा कक्षायें भी होती रहेंगी। ब्रह्मचारियों के लिए निवास और भोजन व्यवस्था नि:शुल्क रहेगी। प्रवेश लेने वाले ब्रह्मचारियों के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं-

- आयु न्यूनतम १६ वर्ष हो।
- न्यूनतम १०वीं कक्षा पढ़े हुए विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।
- गुरुकुल के अनुशासन का पालन करना अनिवार्य होगा।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

स्वामी विष्वङ् परिव्राजक - ९४१४००३७५६
समय- ९:००-१०:००प्रात:, १२:३०-१:३० मध्याह्न
पता- महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर (राज.) ३०५००१

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

जब तक सबकी रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५२

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

शङ्का समाधान - १७

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का- १. भौतिक जगत् में रहते हुए मैं परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना कर सकता हूँ। क्या जीवात्मा मृत्यु (देह त्याग) के पश्चात् भी परमात्म तत्त्व की स्तुति, प्रार्थना, उपासना कर सकता है? सम्भव है क्या?

२. मृत्यु पश्चात् एक जीवात्मा अन्य जीवात्मा से वार्ता कर सकता है क्या?

-वृद्धिचन्द्र गुप्त आर्य, जयपुर

समाधान- १. आपके शब्दों से प्रतीत होता है कि आपकी शङ्का जीवात्मा के एक देह त्यागने के पश्चात् अन्य किसी देह को धारण करने से पूर्व मध्यवर्ती काल में उसके (स्थूल शरीर रहित जीवात्मा) द्वारा स्तुति आदि किए जाने को लेकर है।

यहाँ विवेच्य बिन्दु है-जीवात्मा इस मध्यवर्ती काल में कहाँ, किसके सहारे रहता है? इस सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द का अभिमत द्रष्टव्य है-

(क)-''जब शरीर से निकलता है उसी का नाम 'मृत्यु' और शरीर के साथ संयोग होने का नाम 'जन्म' है। जब शरीर छोड़ता तब 'यमालय' अर्थात् **आकाशस्थ वायु में रहता है।**...पश्चात् धर्मराज अर्थात् परमेश्वर उस जीव के पाप-पुण्यानुसार जन्म देता है। **वह वायु, अन्न, जल अथवा शरीर के छिद्र द्वारा दूसरे के शरीर में ईश्वर की प्रेरणा से प्रविष्ट होता है।** जो प्रविष्ट होकर क्रमशः वीर्य में जा, गर्भ में स्थित हो, शरीर धारण कर बाहर आता है''- सत्यार्थप्रकाश समु. ९, पृ. १६५।

(ख)-**द्वे सृती अशृणवं... यदन्तरा पितरं मातरं च**- (यजु. १९.४७) मन्त्रस्थ -**'यदन्तरा पितरं मातरं च'** की व्याख्या करते हुए महर्षि- **'यदा जीवः पूर्वशरीरं त्यक्त्वा वायुजलौषध्यादिषु भ्रमित्वा पितृशरीरं मातृशरीरं वा प्रविश्य पुनर्जन्म प्राप्नोति, तदा स सशरीरो भवतीति विज्ञेयम्'**- ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पुनर्जन्म विषयः पृ. २१५

उक्त उद्धरणद्वय से स्पष्ट है कि मध्यवर्ती काल में जीवात्मा-वायु, जल, औषधी आदि में रहता है। इनमें रहते हुए उसे कर्म करने के साधन उपलब्ध नहीं हैं। **अतः उस काल में स्तुति आदि सम्भव नहीं।**

स्तुति-प्रार्थना-उपासना के महर्षि दयानन्द प्रोक्त लक्षणों को देखकर आप भली प्रकार समझ सकते हैं कि यह (स्तुति आदि) स्थूल शरीर में ही सम्भव हैं।

२. वार्ता-वार्तालाप करने का अभिप्राय है-दो वा दो से अधिक का परस्पर सम्बद्ध हो कर किसी विषय पर विचार-विनिमय करना। सम्प्रति भौतिक दृष्टि से दूर होते हुए भी चलभाष आदि के माध्यम से सम्बद्ध होकर ही वार्तालाप सम्भव होता है। स्थूल देह में रहते हुए जीवात्मा के पास वार्ता के साधन वाक् एवं श्रोत्र इन्द्रियाँ रहती हैं। इन्हीं के माध्यम से अन्य स्थूल देहधारी साक्षात् सम्मुख उपस्थित अथवा परोक्ष (इस स्थिति में दूरभाष आदि साधनों से) से वार्ता सम्भव होती है। जिनके पास यह (वाक् आदि इन्द्रिय) न हों-ऐसे मूक-बधिर आमने-सामने होते हुए भी वार्ता (शब्दोच्चारण पूर्वक) नहीं कर पाते हैं।

अतः स्पष्ट है कि स्थूल शरीर के अभाव में जीवात्मा दूसरे ऐसे ही-स्थूल देह से रहित जीवात्मा के साथ वार्ता नहीं कर सकता है। यदि यह सम्भव होता, तब पुनः स्थूल शरीर की आवश्यकता ही क्या थी?

इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य, उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम-नियम और उत्तम सहाय्य के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.३१

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

१. वेदपथ के पथिक (आचार्य धर्मवीर स्मृति ग्रन्थ)

पृष्ठ संख्या-२६४

मूल्य-रु. २००/-(आधे मूल्य पर उपलब्ध)

परोपकारिणी सभा के यशस्वी प्रधान डॉ. धर्मवीर जी का जीवन सत्य के लिये संघर्षपूर्ण रहा है। विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने ईश्वर, वेद और धर्म को अपने जीवन से तनिक भी अलग नहीं होने दिया और यही विशेषता रही, जिसके कारण वे एक आदर्श आचार्य, आदर्श नेता, आदर्श लेखक, आदर्श सम्पादक एवं आदर्श उपदेशक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके जीवन की कही-अनकही घटनाएँ हमें भी प्रेरणा दें, इस दृष्टि से ये ग्रन्थ अवश्य पठनीय है। जिन्होंने डॉ. धर्मवीर जी को निकट से देखा है, जो उनके जीवन की घटनाओं के साक्षी रहे हैं, उनके संस्मरण इस कर्मयोगी के जीवन की बारीकियों को उजागर करते हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में चित्रों के माध्यम से भी उनके जीवन की कुछ झलकियों को दर्शाया गया है।

२. महर्षि दयानन्द सरस्वती के कुछ हस्तलिखित पत्र-

पृष्ठ संख्या-३३६ **मूल्य**-रु. २००/-

महर्षि दयानन्द, उनके उद्देश्यों, कार्यों, योजनाओं एवं व्यक्तित्व को समझने में उनके द्वारा लिखे पत्र उतने ही उपयोगी हैं, जितना कि उनका जीवन-चरित्र। ये पत्र महर्षि के हस्तलिखित हैं। पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें मूल-पत्रों की प्रतिलिपि दी गई है और साथ ही वह पत्र टाइप करके भी दिया गया है। यह पुस्तक विद्वानों के दीर्घकालीन पुरुषार्थ का फल है। जनसामान्य इससे लाभ ले-यही आशा है।

३. अंग्रेज जीत रहा है-

लेखक - प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या-२२२ **मूल्य**-रु. १५०/-

इस पुस्तक में डॉ. धर्मवीर जी के 'भाषा और शिक्षा' विषय पर लिखे गये ४२ सम्पादकीयों का संकलन किया गया है। 'परोपकारी' पत्रिका में लिखे गये इन सम्पादकीयों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की माँग समय-समय पर उठती रही है। अतः पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। डॉ. धर्मवीर जी का चिन्तन बेजोड़ था। वे जिस विषय पर जो भी लिखते वह अद्वितीय हो जाता था। उनके अन्य सम्पादकीयों का प्रकाशन भी प्रक्रिया में है। पुस्तक का आवरण व साज-सज्जा अत्याकर्षक है।

४. स्तुता मया वरदा वेदमाता-

लेखक - प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या-१३५ **मूल्य**-रु. १००/-

वेद ईश्वर प्रदत्त आचार संहिता है। वेद की आज्ञा ईश्वर की आज्ञा है और वही धर्म है, इसलिये मानव मात्र की समस्त समस्याओं का समाधान वेद में होना ही चाहिये। वेद के कुछ ऐसे ही सूक्तों की सरल सुबोध व्याख्या ही इस पुस्तक में की गई है। पुस्तक की भाषा इतनी सरल है कि नये-से नये पाठक को भी सहज ही आकर्षित कर लेती है। व्याख्याता लेखक आचार्य डॉ. धर्मवीर जी के गहन आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक चिन्तन व अनुभवों के परिणामरूप यह पुस्तक है।

५. इतिहास बोल पड़ा-

लेखक - प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु

पृष्ठ संख्या-१५९ **मूल्य**-रु. १००/-

इस पुस्तक में इतिहास की परतों से कुछ दुर्लभ तथ्य निकालकर दिये गये हैं, जो कि आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती के गौरव का बखान करते हैं। पुस्तक के लेखक प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु हैं। ऋषि के समय में देश-विदेश से छपने वाले पत्र-पत्रिकाओं के उद्धरण इस पुस्तक में दिये गये हैं।

६. बेताल फिर डाल पर

लेखक - प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या-१०४ **मूल्य**-रु. ६०/-

डॉ. धर्मवीर जी की हॉलैण्ड एवं अमेरिका यात्रा का विवरण एवं अनुभव इस पुस्तक में है। विदेश में आर्यसमाज की स्थिति, कार्यशैली, वहाँ की परिस्थितियाँ एवं विशेषताओं को यह पुस्तक उजागर करती है। यायावर प्रवृत्ति के विद्वान् आचार्य धर्मवीर जी की यह पुस्तक एक प्रचारक के जीवन पर भी प्रकाश डालती है।

७. लोकोत्तर धर्मवीर-

लेखक - तपेन्द्र वेदालंकार,

पृष्ठ संख्या-४४ **मूल्य**-रु. २०/-

तपेन्द्र वेदालंकार (सेवानिवृत्त आई.ए.एस.) ने इस पुस्तक में डॉ. धर्मवीर जी के जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं पर प्रकाश डाला है, जिनसे धर्मवीर जी के महान् लक्ष्यों व तदनुरूप कार्यशैली का पता चलता है। इस लघु पुस्तक से प्रेरणा लेकर प्रत्येक आर्य ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के उद्देश्यों को पूर्ण करने में उत्साहित हो-यही आशा है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें। **-संपादक**

ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है, वैसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय-व्यवस्था से सुख देवे।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.३९

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

जब तक मनुष्य सुख-दु:ख, हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को न जानते तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होते, इससे मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें। **-महर्षि दयानन्द, यजु.,भा ५.४०**

विज्ञान आस्तिकता और नास्तिकता

प्रभात नायक

संसार में बहुत सारे सम्प्रदाय हैं जिनमें आस्तिक और नास्तिक दोनों ही प्रकार के हैं। जो नास्तिक सम्प्रदाय हैं वे भी ईश्वर नहीं है कहते-कहते अपने महापुरुषों को ही ईश्वर मानने लग पड़े हैं, उन्हीं महापुरुषों को जिन्होंने ईश्वर न होने का सिद्धान्त दिया था। मजे की बात यह है कि इससे ठीक उलट ईश्वर को मानने वाले सम्प्रदायों ने ईश्वर के होने की बात तो अपने पूर्वजों से ले ली, पर ईश्वर का ज्ञान-कैसा है? कहाँ रहता है? क्या कर सकता है? क्या नहीं कर सकता? ईश्वर है या नहीं, उसे क्यों मानें? आदि-आदि ज्ञान नहीं लिया, फलस्वरूप हर सम्प्रदाय को स्थापित करने वाला उस सम्प्रदाय के ईश्वर का कंट्रोलर बन गया। अगर सम्प्रदाय प्रमुख कहेगा तो ईश्वर को उसके गुलाम की तरह उसकी बात माननी अनिवार्य है, यह विश्वास सारे सम्प्रदायों में बिठा दिया गया। इसके विरुद्ध प्रश्न करने ही नहीं, विचार करने पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया, क्योंकि सारे सम्प्रदाय-प्रमुख अविचार के, अज्ञान के, तर्कविहीनता और अन्धभक्तिरूपी पैरों वाले सिंहासन पर ही विराजमान होते हैं। जो लोग बोलने की स्वतन्त्रता के नाम पर दूसरों के सम्प्रदायों पर हँसते हैं, उनके स्वयं के सम्प्रदायों में तो विचार करने की भी स्वतन्त्रता नहीं है और जो भी उनके सम्प्रदाय के विरुद्ध कुछ कहता है उसकी तो जीने की भी स्वतन्त्रता छीनने का फरमान जारी कर दिया जाता है। ईश्वर को बिना जाने मानने वाले यह भूल गए कि बिना 'जाने' माना ही नहीं जा सकता, दूसरे शब्दों में, ये भी नास्तिक बनने की ओर ही चलने लगे।

अभी कुछ वर्षों से एक नये सम्प्रदाय ने जन्म लिया है। जो है विज्ञानवादियों का नास्तिक सम्प्रदाय। ये अपने आपको Atheist कहते हैं और इनका प्रमुख कर्त्तव्य किसी भी आस्तिक सम्प्रदाय का बिना उसकी मान्यताओं को और सिद्धान्तों को जाने उसका मजाक उड़ाना है। ये प्राय: सारे आस्तिक सम्प्रदायों को समान मानकर किसी अन्य के दोषों को किसी पर भी आरोपित कर अपने आपको श्रेष्ठ बताने में लगे रहते हैं। आस्तिक सम्प्रदायों के धर्माचार्यों, प्रमुखों की विज्ञान के प्रति बेरुखी इन्हें अजेय होने के प्रति आश्वस्त करती है, जिस कारण अपनी स्वयं की अर्थात् विज्ञान की कमियों, बुराइयों, मनमानियों, मूर्खताओं और झूठों की तरफ ये पीठ कर लेते हैं और हमेशा ही दूसरों को ''हमारे प्रश्नों के उत्तर दो, तुम अपने सिद्धान्तों पर प्रश्न करो'' आदि आग्रह करते रहते हैं।

आज के बुद्धिमान् मनुष्य के आगे बड़ी दुविधा की स्थिति है। आस्तिक सम्प्रदायों में अवैज्ञानिकता है, ज्ञान बिना तर्क के है, कट्टरता है, धार्मिक उन्माद है और वही अब इन विज्ञानवादी नास्तिकों के सम्प्रदायों में भी नजर आने लगा है, जैसे-

१. दूसरों के विरुद्ध बड़े तर्क और प्रमाण का प्रयोग करते हुए दूर-दूर की कौड़ियाँ लाते हैं। ये कहते हैं कि देशों की व्यवस्था और प्रगति को नास्तिकता होने के कारण और आस्तिक बहुल वाले देशों की बुराइयाँ व अपराध ईश्वर मानने के कारण हैं और निष्कर्ष निकालते हैं कि आस्तिकता रुकावट है मनुष्य की प्रगति में। वास्तविकता यह है कि ईश्वर को जो जानकर मानता है, वो पाप कर ही नहीं सकता। उसके कामों में एक श्रेष्ठता अपने आप ही आने लगती है। पापरूपी समस्या नकली आस्तिकों में या ठीक से कहें तो जो असल में ईश्वर को नहीं मानते पर दिखावा करते हैं आस्तिक होने का, उनकी है। वैसे तो आस्तिकों के पास अच्छा बनने के दो कारण हैं-

१. ईश्वर के दण्ड का भय और

२. ईश्वर की कृपा और प्रेम का लालच

पर यदि कोई इन दोनों का अपने जीवन में महत्त्व न समझे तो क्या सभी आस्तिक बुरे हो जाते हैं? आस्तिकों के पास तो अच्छे कर्म करने के ये दो कारण भी नहीं हैं फिर भी यदि वे अच्छे कर्म करते हैं तो इसके कारण नास्तिकता अच्छी नहीं हो जाती। अच्छे और बुरे कर्मों में सबसे प्रमुख कारण शिक्षा होती है जिसके द्वारा अच्छे कर्म करने का मूल उद्देश्य और उसका हमारे हित से क्या सम्बन्ध है यह जानना होता है। जो यह समझ लेता है वो नास्तिकता और

आस्तिकता से अलग हटकर अपने कर्म करता है। दूसरा कारण समाज में न्याय और दण्ड व्यवस्था होती है। न्याय व्यवस्था जितनी चुस्त और पक्षपातरहित, त्वरित और कठोर होती है समाज में पाप और अव्यवस्था उतनी ही कम होती है। इसका आस्तिकता या नास्तिकता से कोई लेना-देना नहीं होता।

२. संसार में ही क्यों, सारे ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी नजर आता है वो सारा का सारा भौतिक पदार्थ है। भौतिक पदार्थ जड़ है। जड़ वस्तु स्वयं से किसी भी प्रकार की गति नहीं कर सकती यह वैदिक सिद्धान्त है और यही बात आदरणीय न्यूटन जी ने अपने गति के सिद्धान्तों में कही है। इस कारण यह कहना कि सबसे छोटी इकाई इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन अपनी ऋणात्मक व धनात्मक शक्तियों के कारण स्वत: गतिमान है, सर्वथा गलत है। यदि वैज्ञानिक की तरह बात कर रहे हो तो ऐसे ही इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रॉन बनने के बाद बीच में से क्यों शुरु करते हो। बिल्कुल प्रारम्भ से शुरु करें। यह इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रॉन भी तो छोटे कणों से बने हुए हैं। यह बताओ की ये जो कण हैं वे कैसे हैं? क्या वे जड़ नहीं हैं? इनसे व्यवस्थित इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रॉन कैसे बन गए। जब बहुत सारे कण मिलकर इलेक्ट्रॉन बने तो क्या वैसे ही अन्य कण मिलकर प्रोटोन, न्यूट्रॉन बने इलेक्ट्रॉन ही क्यों न बने? यह कैसे हुआ? यह घूमने की क्रिया तो एटम बनने के बाद हुई उसके पहले गति कैसे थी? गति थी तो जुड़े कैसे? धन विद्युत आवेश का धन के प्रति अनाकर्षण रहता है तो यदि सारे धन-धन मिलकर प्रोटोन बने तो ये कण एकत्रित कैसे हुए और उन्हें जोड़ कर कौन रख रहा है? वे बिखर क्यों नहीं जाते? यह जो मूल कण है वो भी जड़ है। कुछ भी बनने से पूर्व यह या तो सक्रिय था (विद्युत आवेश सहित था) तो इसका स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं रह सकता। यह तुरन्त ही किसी से जुड़ जायेगा। नियन्त्रण के अभाव में कुछ भी उपयोगी नहीं बन सकता।यदि यह कण निष्क्रिय था तो उसे सक्रिय कैसे बनाया जायेगा? कौन बनाएगा? यदि कोई नहीं है तो इस कण से सृष्टि बन ही नहीं सकती।

सांख्य दर्शन में महर्षि कपिल ने सृष्टि-निर्माण का विषय बहुत विस्तार से लिया है। यह जो सृष्टि का मूल कण है, उसका नाम प्रकृति कहा है। इस कण में विद्युत आवेश की तीनों दशाएँ एक साथ उपस्थित रहती हैं। (+ve charge) धनात्मकता (-ve charge) ऋणात्मकता आवेश रहित (without charge) यह कण दो अवस्थाओं में रहता है-एक साम्यावस्था में (in equilibrium) इस अवस्था में तीनों विद्युत आवेश परस्पर एक-दूसरे को प्रभावहीन कर रहे होते हैं और संयुक्त अवस्था में (disturbed state) जिसमें सभी आवेश बहिर्मुखी हो अन्य कणों के साथ संयुक्त होने को तैयार हैं अथवा संयुक्त हो चुके हैं। यह जब साम्यावस्था में रहता है तो इसका नाम प्रकृति कहा है। इस प्रकृति की साम्यावस्था को भंग करना सृष्टि-निर्माण का प्रथम कार्य होता है जिसे ईश्वर करता है। बिना पदार्थ के ईश्वर भी कुछ बना नहीं सकता। साम्यावस्था भंग होते ही इसका नाम बदल कर महत् हो जाता है और अब विद्युत आवेशों के बाहर आते ही जो सर्वप्रथम पदार्थ बनता है उन्हें हम प्रोटोन, इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन कहते हैं। महर्षि कपिल उन्हें वैकारिक अहंकार, तैजस अहंकार और भूतादि अहंकार कहते हैं। आगे यही मिलकर एटम बनाते हैं, जिन्हें परिमण्डल कहा जाता है।

अब यदि यह कहा जाय कि यह सारा ज्ञान भारतीय वैज्ञानिकों (जिन्हें ऋषि, महर्षि कहा जाता था) को हजारों नहीं लाखों, करोड़ों वर्ष पहले पता था तो वैज्ञानिकों की श्रेष्ठता का गर्व चूर-चूर हो जायेगा। वास्तव में भारतीय दर्शनों में जितना तर्क और वैज्ञानिकता है वो पश्चिमी वैज्ञानिकों की कल्पना से भी परे है। न्याय दर्शन में महर्षि गौतम बड़ी स्पष्ट घोषणा करते हैं किसी भी बात को तब तक नहीं मानना चाहिये जब तक उसे सिद्ध न कर दिया जाए। खेद की बात है कि आजकल के वैज्ञानिक दूसरों पर तो हँसते हैं पर स्वयं एक असिद्ध क्रमिक विकास (Evolution Theory) को सच मानते हैं और इस मूर्खता को सारे संसार के गले के नीचे उतारने में लगे हैं। यह क्रमिक विकास भी उन्होंने बीच में से ही पकड़ा है सीधे अमीबा पर पहुँच गए। पेड, पौधे, वृक्ष, वनस्पति आदि पर क्रमिक विकास की कभी चर्चा सुनने में नहीं आई, ये कैसे बने? इनमें और जो पशु, पक्षी, कीट, पतंग हैं उनमें भी परस्पर क्रमिक विकास है या दोनों अलग-अलग बने? क्या

वनस्पति जीवित नहीं है? इस झूठे क्रमिक विकास में सिवाय कल्पना की उड़ान के कुछ भी सच नहीं है। अपने आप को बचाने की तीव्र इच्छा के कारण एक जीव दूसरे में परिवर्तित हो जाता है, पर हम यह पाते हैं कि अपनी इच्छा से अपने आप में बदल नहीं सकता। संसार में इतने गंजे-टकले घूम रहे हैं, हर एक बाल चाहता है पर कितनी ही तीव्र इच्छा क्यों न हो एक रोम भी केवल इच्छा मात्र से उगाया नहीं जा सकता। लोग आनुवांशिकता से गंजे होते देखे गए हैं पर विकासवादी अगली पीढ़ी से पूरी नई प्रजाति के जन्म की बात करते हैं। यह सामान्य तौर पर देखा जाता है कि किसी प्राणी में जब वर्णसंकरता (hybridisation) आती है तो उस नई प्रजाति में प्रजनन-क्षमता नहीं रहती और उससे अगली पीढ़ी को वो स्वयं जन्म नहीं दे सकता और यह नियम वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं पर समान रूप से लागू है। ऐसे में किसी नई प्रजाति का पैदा होना और टिके रहना संभव ही नहीं है तो उससे आगे किसी अन्य प्रजाति के जन्म लेने की बात ही नहीं की जा सकती। **सोचिये किसी मनुष्य का पेटेर्निटी टेस्ट करने पर उसका पिता बन्दर है ऐसा किसी प्रयोगशाला में कभी सिद्ध हुआ है?** इस प्रश्न पर प्राय: यह उत्तर दिया जाता है कि यह परिवर्तन बड़ा ही धीमे-धीमे होता है। पर होता ही है इसका क्या प्रमाण है? प्रमाण तभी होगा या तो दिखे जो कभी आज तक हुआ नहीं या फिर कहीं दो विभिन्न प्रजातियों में आन्तरिक रक्त अथवा कोशिका के स्तर पर समानता होवे। ऐसा भी नहीं है।

भारतीय संस्कृति अत्यन्त पुरानी है इसके अनुसार मनुष्य के जन्म से लेकर १९६०८५३११८ वर्ष हो चुके हैं। यह बात वेद, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में कही गयी है। कालगणना की बहुत ही व्यवस्थित विधि यहाँ उपलब्ध है। दिन, मास, वर्ष से लेकर कलयुग-४३२००० वर्ष, द्वापर युग-८६४०००, त्रेता युग-१२९६००० वर्ष और सतयुग १७२८००० के बाद चारों मिलाकर एक चतुर्युगी ४३२०००. ७१ चतुर्युगियों का एक मन्वंतर और १४ मन्वंतरों का एक कल्प। इतनी लम्बी अवधि के बावजूद कहीं पर भी किसी भी पशु-पक्षी की प्रजननशील नई प्रजाति का प्रजातिपरिवर्तन का कोई प्रमाण नहीं है। इस पर यह संभव है कि वैज्ञानिक पक्ष मनुष्य के इतने लम्बे काल से अस्तित्व में रहने की बात से ही इन्कार कर देवें क्योंकि इनकी मान्यता तो मनुष्य के पत्थर युग, कांस्य युग, लोहा आदि युगों में धीरे-धीरे ज्ञान-कण बटोरते-बटोरते यहाँ तक पहुँचने की है। इनके अनुसार तो भाषा भी क्रमिक विकास द्वारा विकसित हुई है। इसका अर्थ यह हुआ कि भाषा भी प्रकृति के टीं टीं, पीं पीं, धम, धम सुनकर बनायी गयी है। बहुत सारे लोगों ने इस बात का प्रयोग कर देखा है कि यदि बच्चा बोल न सुने तो स्वयं नहीं बोल सकता। देखिये घन्टी की आवाज हिन्दी में टन टन है अगर ध्वनि सुनकर स्थापित किया होता तो अंग्रेजी में रिंग रिंग या क्लिंग-क्लिंग न होती। प्रकृति की ध्वनियों में हम हमारी सीखी हुई भाषा के वर्ण ढूँढते हैं न कि ध्वनि सुनकर वर्णों का निर्धारण करते हैं। सांकेतिक भाषा तो वे लोग विकसित करते हैं जो पहले से ही किसी भाषा का प्रयोग करते हैं। ऐसे लोग ही मूक-बधिर लोगों को सांकेतिक भाषा सिखाते हैं। गूंगे-बहरे मिलकर बिना सिखाये संकेतों से बात करने लगें यह संभव ही नहीं। भाषा के बिना ज्ञान-संचय, प्रसार और वृद्धि संभव ही नहीं।

वैज्ञानिकों के अनुसार तो अग्नि और चक्र का आविष्कार मनुष्य ने बहुत काल बाद किया। हमारा यह कहना है कि संसार की सबसे पुरानी पुस्तक जिसे सभी मान्य करते हैं वो ऋग्वेद है। पुस्तक है तो कुछ तो लिखा होगा न, कोरे कागजों को पुस्तक नहीं कहा जाता। अब उसमें जो लिखा होगा उसका कुछ अर्थ भी तो होना चाहिये अन्यथा पुस्तक न रहेगी। तो वेद में जो लिखा है उसका अर्थ भी है और मुख्य बात भाषा भी है। ऋग्वेद का सबसे पहला शब्द अग्नि है। इसका मतलब यह हुआ कि जो पहला मनुष्य जन्म लेता है उसे जो सबसे पहला ज्ञान दिया जाता है वो अग्नि है। प्रथम मन्त्र कहता है, ''मनुष्य को अग्नि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये उसी से उसे विभिन्न पदार्थ, धन-दौलत प्राप्त होगी। वेद की जो भाषा है वो अत्यन्त व्यवस्थित और वैज्ञानिक है। स्वर अलग हैं व्यंजन अलग हैं कौन से अक्षर मुख के किस भाग से उच्चारित किये जायेंगे सब निश्चित और क्रमबद्ध है। आखिर भाषा ज्ञान-प्रसार का माध्यम ही तो है। जो भाषा कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक

ज्ञान प्रदान कर सकती है वह भाषा सर्वोत्तम होगी। वेद के मन्त्रों का अर्थ जब किसी अन्य भाषा में किया जाता है तो एक मन्त्र के अनुवाद में कभी-कभी तो पूरी पुस्तक बन जाती है। विद्वान् एक ही मन्त्र की व्याख्या कई दिनों तक करते हैं। जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाता है। अक्षरों के भी अर्थ होते हैं, अन्य भाषाओं के अक्षर अर्थहीन होते हैं। नये शब्दों का निर्माण धातुओं से सरलता से सुव्यवस्थित तरीके से किया जा सकता है आदि बहुत सारी अन्य विशेषताएँ वेद की भाषा में हैं। संसार की समस्त भाषाओं में संस्कृत के शब्दों की उपलब्धता सभी भाषाओं का संस्कृत से उद्गम बता रही है। ऐसी उत्तम भाषा, वेद जैसा श्रेष्ठतम ज्ञान, ऐसा ज्ञान जो करोड़ों वर्षों से एक सा बना हुआ है, जिसमें आज तक परिवर्तन की आवश्यकता महसूस नहीं की गयी हो, जो सारे संसार में समान रूप से व्यावहारिक हो। सारे धर्मों और सम्प्रदायों में भी लागू करने योग्य हो। जिसका हर मन्त्र तर्क और विज्ञान सम्मत हो। तर्क से सिद्ध किये जाने की योग्यता के कारण और विषयों की विविधता और गहराई के कारण, मनुष्य की क्षमताओं से परे का होने के कारण और सबसे बड़ी बात संसार के सर्वप्रथम मनुष्य को मिलने के कारण वेद-ज्ञान ईश्वरीय, अपौरुषेय माना गया है। जो ज्ञान कभी कालबाह्य नहीं होता, जो हर समय और हर जगह लाभदायक होता है उसे पुराना कहकर, बिना पढ़े ही बेकार मानकर अपना नुकसान करने को उद्यत लोगों को विज्ञानवादी अथवा वैज्ञानिक कैसे कहा जा सकता है? इस प्रकार वेदों के प्रति द्वेष की भावना आस्तिक सम्प्रदायों में होना समझा जा सकता है पर वैज्ञानिक ऐसा करें, केवल मात्र इसलिए क्योंकि वेद ईश्वर के अस्तित्व को स्थापित करने वाले ग्रन्थ हैं, यह तो वैज्ञानिकों की भी साम्प्रदायिक सोच को बतलाता है। स्वयं की, संसार की हानि मंजूर है पर हमारी मान्यता के विरुद्ध जिन लोगों की मान्यता है, उन लोगों की सारी ही बातें बुरी बताना क्या जरूरी है?''

संसार में जो भी वस्तु बनी हुई है उसका बनाने वाला होना ही चाहिये। बनी हुई वस्तु से हमारा तात्पर्य है दो या दो से अधिक पदार्थों से मिलकर जो वस्तु बनती है। जिस क्षण वो घटक पदार्थ उचित मात्रा में, उचित रीति से संयुक्त किये जाते हैं, वो नई वस्तु अस्तित्व में आ जाती है। इस बनने से पूर्व वो वस्तु अस्तित्व में नहीं थी। सिद्धान्त यह है कि जो वस्तु कभी किन्हीं पदार्थों के मिलने से बनती है, वो उन्हीं पदार्थों के अलग-अलग होने से नष्ट हो जाती है, नहीं रहती। इसका मतलब यह हुआ कि जो वस्तु किसी अन्य वस्तु से मिलकर नहीं बनी होती वो वस्तु कभी नहीं बनती अर्थात् उसका कोई बनाने वाला नहीं होता। संसार में इस प्रकार की तीन वस्तुएँ हैं जो किसी से मिलकर नहीं बनतीं इस कारण उनका बनाने वाला भी नहीं होता। यह तीनों वस्तुएँ सदा रहती हैं वे हैं-१. ईश्वर २. जीवात्मा ३. प्रकृति (वो मूल कण जो साम्यावस्था में रहता है और सृष्टि के बनाने में प्रमुख और एकमेव पदार्थ की भूमिका निभाता है। ये तीनों किसी अन्य पदार्थों से मिलकर नहीं बने हैं अत: ये कभी नहीं बने और इस कारण इनका कोई बनाने वाला नहीं होता और ये कभी नहीं मिटते इस कारण ये सदा रहते हैं। ईश्वर जीवात्मा के उपयोग के लिए, कर्म करने के लिए, पूर्व में किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिए सृष्टि बनाता है। इस सृष्टि से ईश्वर को कोई काम नहीं, न ही प्रकृति को इसकी जरूरत है। सृष्टि तो जीवात्माओं के लिए जरूरी है। जड़ प्रकृति को सृष्टि में रूपान्तरित करने के लिए किसी चेतन की, किसी ज्ञानवान् चेतन की आवश्यकता पड़ती है। वो चेतन ऐसा होना चाहिये जिसके पास प्रकृति और उससे बनने वाले तमाम पदार्थों का ज्ञान हो। सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया जानता हो, सृष्टि निर्माण का सामर्थ्य भी हो। ऐसा जो भी है उसका अस्तित्व इस अत्यन्त उपयोगी संसार, इसकी वस्तुएँ, जीवों के शरीर की रचना, सभी में परस्पर तारतम्य, नियमबद्धता, छोटे से छोटे एटम से लेकर बड़े-बड़े सौरमण्डल तक के संचालन से प्रकट हो रहा है। वैज्ञानिक कहते हैं यह सब अपने आप हो रहा है, ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है। न तो ईश्वर है न जीवात्मा। बस वे यह नहीं बता पाते कि जड़ में ज्ञान कब, कैसे और कहाँ से पैदा हो जाता है। जो जीवात्मा जन्म लेने वाला है उसके भोजन की उपस्थिति कैसे सुनिश्चित होती है? इनका कहना है कि पहले सरल पदार्थ बनता है फिर क्लिष्ट पदार्थ बनता है, पर सबसे पहले तो इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन और न्यूट्रॉन बनता है। क्या इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन और न्यूट्रॉन सरल पदार्थ हैं? पहले क्या बनता है हाइड्रोजन फिर हीलियम जैसे भारी तत्त्व? क्या यहाँ भी क्रमिक विकास होता है? पहले हाइड्रोजन फिर हीलियम आदि। सौरमण्डल, पृथ्वी, प्रकाश, पानी, हवा, मिट्टी, वनस्पति ये कैसे बने?

इनका अनुपात किसने निश्चित किया? इन सबको बनाने में ज्ञान लगता है, योजना लगती है निश्चित क्रम लगता है। जड़ पदार्थ में केवल स्थिति-परिवर्तन होता है और स्थिति-परिवर्तन की उसके स्वयं के लिए कोई उपयोगिता नहीं होती। जैसे कम्प्यूटर में जो हार्ड डिस्क होती है वो जानकारी चुम्बकीय परिवर्तन से जमा करती है, वो किसी चेतन के लिए तो ज्ञान हो सकता है पर हार्ड डिस्क उसका क्या उपयोग करेगी? चाहे कितना भी उच्चकोटि का कम्प्यूटर क्यों न बना लिए जाए उसे बनाने का काम कोई चेतन ही करेगा उसे चालू करने का काम भी चेतन का ही है। चेतन वो होता है जो जड़ में क्रिया उत्पन्न करता है, अन्यथा जड़ कुछ नही कर सकता। इतनी सीधी सरल बात समझ नहीं पाते और व्यवहार इस प्रकार किया जाता है जैसे सारे संसार का ज्ञान इनके पास है, दूसरे लोग गलतियाँ कर सकते हैं, पर वैज्ञानिक नहीं।)

शरीर में आत्मा नहीं होने के कारण ज्ञान किसे होता है यह वैज्ञानिक नहीं बता पाते। शिक्षा का प्रभाव किस पर पड़ता है? उपदेश सुनने से किसमें परिवर्तन आता है। यदि सब जड़ है तो रसायन शास्त्र की प्रयोगशाला में जहाँ बहुत सारे रसायन भरे पड़े हैं वहाँ पर यदि उपदेश कराया जाए अथवा केमिस्ट्री का ही लेक्चर दिया जाए तो क्या रसायनों में बदलाव आयेगा? क्या तेजाब पानी बन जाएगा? जैसे उपदेश से बुरे लोग अच्छे हो जाते हैं दूसरों को कष्ट देने वाले परोपकारी बन जाते हैं, क्योंकि उपदेश का असर चेतन पर होता है, जड़ पर नहीं। उपदेश से ज्ञान में परिवर्तन आता है जो चेतन का लक्षण है। न्याय दर्शन में आत्मा के लक्षण बताते हुए कहा गया है कि सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न और ज्ञान ये चेतन के लक्षण हैं। यहाँ सुख-दु:ख से मतलब है उनको अनुभव करने, उनके होने का अहसास होना, जिसमें यह नजर आयें उसमें आत्मा है ऐसा मानना चाहिये,। ज्ञान चेतन का लक्षण है, जड़ का नहीं।

हम कुछ संक्षेप में वैज्ञानिकों और विज्ञानवादियों ने जो कारनामे किये हैं उन पर नजर डालते हैं-

१. मनुष्य उत्तरोतर श्रेष्ठ बनता जाता है यह बात सभी मानते हैं। पर विज्ञानवादियों का कहना है कि क्रमिक विकास होता है, अगली पीढ़ी पिछली पीढ़ी से अच्छी होती है। इसका मतलब यह हुआ कि पिछली पीढ़ी घटिया होती है इस बात ने वर्तमान पीढ़ी के मन में पूर्वजों के प्रति जो सम्मान होना चाहिये उसे नष्ट किया। पिता और पुत्र में ऐसा जनरेशन गैप दिखाया जिसमें पिता को मूर्ख अज्ञानी कहकर अपमानित किया जा सके। माता-पिता की आज्ञा के विरुद्ध व्यवहार करना श्रेष्ठ (uptodate) और बुद्धिमानी का काम माना जाता है।

२. प्रकृति में क्रूरता है। केवल योग्य को ही जीने का हक है ओर जो योग्य है उसे अयोग्यों को मार डालने का हक है। ऐसा विज्ञानवादियों का सिद्धान्त है। इस कारण समाज में परोपकार, परस्पर समन्वय, कमजोरों की रक्षा और पोषण यह पिछड़ेपन की निशानी है ऐसा माना जाने लगा है। दूसरे शब्दों में अपराध अब क्षम्य ही नहीं पुरस्कृत होने के योग्य हो गए हैं। चारों तरफ गला-काट प्रतिस्पर्धा का माहौल है। बच्चे से लेकर बूढ़े तक टेंशन में हैं। पागलों की तरह पहला आने के लिए दौड़ रहे हैं और भ्रष्टाचार व्यभिचार आदि न करने योग्य कर्म कर रहे हैं।

३. मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हवा, पानी, भोजन ये तीनों शुद्ध और पवित्र रहने चाहिये। इस बात को वैज्ञानिकों से अच्छा कौन समझ सकता है। पर बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियाँ, मशीनें, यातायात के साधन, मोटर, बस, कार, ट्रक, जहाज, विमान आदि हवा को प्रदूषित करने के ग्लोबल वॉर्मिंग के साधन किसने बनाए? आज तक वायु को शुद्ध करने का कोई भी उपाय वैज्ञानिक नहीं सोच पाए हैं, प्रदूषण बढ़ाने के उपकरण लगातार बढ़ते जा रहे हैं। वैज्ञानिकों के पास एक बड़ा ही मजेदार वाक्य है " The solution to pollution is dilution इसके अनुसार यदि छोटा सा इलाका प्रदूषित हो रहा है तो उस प्रदूषण को बड़े इलाके में फैला दो तो प्रदूषण का निवारण हो जायेगा। जिन्होंने लालबुझक्कड़ की कहानियाँ सुनी होंगी उन्हें वो कथा याद आयेगी जिसमें बड़े उत्सव के भोजन के बड़े से बर्तन में बन्दर द्वारा ऊपर से मल-मूत्र कर देने की समस्या को लालबुझक्कड़ जी ने ''गड्डम गड्ड मिलाय दो तन-तन सबको होय'' अर्थात् बड़े बर्तन में पूरे को मिला देने पर सबके हिस्से में थोड़ा-थोड़ा ही आयेगा। हमारे पास प्रदूषण का कोई इलाज नहीं है पर हम प्रदूषण करते ही रहेंगे। इसके साथ पेड़ काटने की बड़ी-बड़ी मशीनें भी हमने बनायी हैं, जिससे जल्द से जल्द, अधिक से अधिक पेड़ काटे जा सकें और इस समस्या को और गम्भीर किसने बनाया वैज्ञानिकों ने!! **शेष भाग अगले अंक में.....**

राष्ट्र रक्षा में महर्षि दयानन्द

ब्रिगेडियर चितरंजन सावन्त, वी.एस.एम.

एक समाज सुधारक संन्यासी स्वदेश सुरक्षा के बारे में चिन्तन करे और अपने विचारों को अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिपिबद्ध करे, यह बात रक्षा विशेषज्ञों के गले नहीं उतरती। किन्तु दयानन्द सरस्वती के विचारों को पढ़ने के बाद संशय के बादल छंटने लगते हैं और ज्ञानरूपी सूर्य से अज्ञान का अंधेरा दूर हो जाता है।

उस महान् पुस्तक का छठा समुल्लास स्वदेश सुरक्षा के सूक्तों से सैनिक और असैनिक का समान रूप से ज्ञानवर्धन करता है। यूँ तो वह अध्याय राजधर्म से सम्बन्धित है, किन्तु हम यह कह सकते हैं कि स्वराष्ट्र-सुरक्षा, राष्ट्र-संचालन का और राज-धर्म का अभिन्न अंग है।

यह कहना उचित होगा कि स्वदेश सुरक्षा राष्ट्र के जन-जन का धर्म है और इस महान् दायित्व का वहन नर और नारी को समान रूप से आजीवन करना है। अपने जीवनयापन में हम किसी भी व्यवसाय से क्यों न जुड़े हों, व्यवसाय की खातिर राष्ट्र रक्षा के दायित्व से विमुख होना आत्महत्या करने के समान होगा।

आम आदमी की भूमिका- इतिहास साक्षी है कि अनेक युगों में राष्ट्र-रक्षा के महान् कार्य में आम आदमी ने बहुत ही कम रुचि ली। मध्य युग से भारत में अंग्रेजों के शासन काल तक विदेशी आक्रमणकारी लगातार आते रहे, तत्कालीन सीमावर्ती छोटे-छोटे राजा उनसे अपने स्तर पर जूझते रहे, किन्तु सामान्य जन युद्ध की गतिविधियों से विरक्त रहे। वे अपना-अपना व्यवसाय चलाते रहे और उन्होंने सामाजिक और आर्थिक स्तर पर विदेशी सेनाओं का विरोध नहीं किया। रणभूमि में विदेशी आक्रमणकारियों से क्षत्रिय वर्ग जूझता रहा, युद्ध होते रहे किन्तु किसान अपना खेत जोतता रहा, बनिया तराजू तोलता रहा, विद्यार्थी पुस्तक पढ़ता रहा और शिक्षक पढ़ाते रहे और केवल राजाओं के वेतनभोगी सैनिक विदेशियों के नए हथियारों का अपनी पुरानी शैली से सामना करते रहे, हारते रहे और राजा सत्ता खोता रहा। कुछ ही घण्टों के युद्ध में देश के शासन की बागडोर भारतीयों के हाथ से निकलकर विदेशियों के हाथों में जाती रही।

पृथ्वीराज चौहान मौहम्मद गौरी की सेनाओं की प्रतिक्षा दिल्ली के निकट तराईन के मैदान में करता रहा, उसने पंजाब की ओर आगे बढ़कर स्थानीय लोगों के सहयोग से विदेशी आक्रमणकारी के कुछ अंगों पर घात लगाकर हमला नहीं किया। देश के अन्य राजाओं का सहयोग भी नहीं प्राप्त किया। अनेक व्यवसायों में लगे भारतवासियों को शस्त्र की शिक्षा देकर रणभूमि में नहीं उतारा।

कोउ नृप होय हमें का हानि- इस नीति ने विनाशकारी परिणाम हमारे सामने रख दिए। पृथ्वीराज चौहान की हार ने हमारे धर्म, संस्कृति और मनोबल पर ऐसा कुठाराघात किया कि आहत भारत को स्वस्थ होकर रणभूमि में विदेशियों से दो-दो हाथ करने में कई शताब्दियाँ बीत गईं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने निर्बल शरीर की नब्ज़ पर हाथ रखकर यह जाना और पहचाना कि जब तक सम्पूर्ण देश एकजुट होकर विदेशियों का मुकाबला नहीं करेगा, तब तक हमारी हार होती रहेगी। स्वदेश-सुरक्षा का भार केवल क्षत्रियों के कन्धों पर नहीं रखा जा सकता। यदि ब्राह्मण केवल पूजा-पाठ में तल्लीन रहेंगे, वैश्य केवल व्यवसाय के लाभांश पर ही ध्यान केन्द्रित करेंगे और शत्रु को पराजित करने के लिए शूद्रों को भी शस्त्र-संचालन की शिक्षा नहीं देंगे, तो रणभूमि में पराजय अवश्य होगी।

जन-जन देश का रक्षक है। जन-जन सैनिक है। जन-जन को शस्त्र संचालन आना चाहिए और सभी जन-नायकों को सेना नायकों के समान रणनीति की शिक्षा लेनी चाहिए। यह पहली बार ऐसा हुआ कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे संन्यासी ने दु:खती हुई रग को पहचाना और इस निर्बलता को सबलता में बदलने के लिए सक्रिय कदम उठाए।

शस्त्र और शास्त्र दोनों की ही शिक्षा महत्वपूर्ण है और इस पर समान रूप से बल दिया जाना चाहिए। स्वामी दयानन्द ने यह स्पष्ट रूप से लिखा कि सेना नायक को बहुत ही शान्त मन से, बिना क्रोध के, रणभूमि की स्थिति

का आंकलन करना चाहिए और शत्रु को हराने के लिए रणनीति बनानी चाहिए। यदि शत्रु शक्तिशाली है और हम निर्बल हैं तो हमें रणभूमि से खरगोश अर्थात् शश: के समान दूर जाकर उस अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब सैन्य शक्ति का संचय कर के हम शत्रु से अधिक शक्तिशाली बनकर उस पर हमला कर सकें। छत्रपति शिवाजी महाराज ने इसी रणनीति का पालन किया और मुगलों को तथा आदिलशाही राज्यों की सेनाओं को अलग-अलग पराजित किया।

पराजय से विजय- हमें कभी भी पराजय से भयभीत नहीं होना है और अवसर की ताक में सदैव रहना चाहिए। स्वामी दयानन्द ने वन्य पशु चीता का उदाहरण दिया। चीता दबे पांव आगे बढ़ता है और अवसर मिलते ही छलांग लगाकर शिकार करता है। रणभूमि में भी हमें अवसर की ताक में रहना है। अवसर का लाभ उठाकर शत्रु को पराजित कीजिए। विजय पाने के लिए मनोबल का प्रमुख स्थान है, यदि हम अपने मनोबल को धर्म के आधार पर ऊँचा उठाते रहें तो शत्रु को पराजित करने में सुविधा होगी। मनुस्मृति के आधार पर स्वामी दयानन्द ने लिखा कि पराजित शत्रु की महिलाओं का निरादर कभी नहीं करना चाहिए और कभी भी उनका शोषण नहीं करना चाहिए। यदि पराजित शत्रु की महिलाओं और बच्चों की देखभाल हमारी विजय सेना करती है तो हमारा मनोबल ऊँचा होता है और शत्रु हथियार डालने को तैयार रहता है।

कहते हैं कि सेना पेट के बल आगे बढ़ती है अर्थात् सैनिक का भरण-पोषण सेना नायक और राजा भलिभाँति करते हैं तो वह सेना शत्रु को पराजित करने में सफल होती है। मनुस्मृति के अनेक श्लोकों से शिक्षा लेते हुए हमें अपनी सेना को सबल बनाते रहना चाहिए और शत्रु को पराजित करने में कोई कसर नहीं छोड़नी चाहिए।

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने,

जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091

email : psabhaa@gmail.com

अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं, इस से गृहस्थजन विशेषकर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्य व्यवहार से करें।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२४

बाधाओं को बौना करें

महात्मा चैतन्यस्वामी

आगे बढ़ने वालों के जीवन में बाधाएँ आती ही रहती हैं। संसार में ऐसा आपको कोई एक भी व्यक्ति नहीं मिलेगा जिसे जीवन में बाधाएँ न आई हों। बल्कि जिन लोगों का नाम आज इतिहास में अमर हो गया है उन लोगों के जीवन में और भी अधिक बाधाएँ आईं, मगर उन्होंने उन बाधाओं का बहुत ही साहस और धैर्य के साथ सामना किया। यदि उन्होंने ऐसा न किया होता तो वे भी कहीं जीवन की दौड़ में पिछड़ कर लुप्त हो चुके होते। जीवन है तो जीवन में उतार-चढ़ाव भी है। जो व्यक्ति इनसे घबरा जाता है, वह जीवन में किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो पाता है और इसके विपरीत जो जीवन के द्वन्द्वों को सहन करता हुआ अपने प्रयास को जारी रखता है वह सफलता को प्राप्त होता है। इसलिए बाधाओं से व्यक्ति को घबराना नहीं चाहिए बल्कि उन्हें जीवन की एक चुनौती समझकर उन्हें दूर करना चाहिए। सबसे पहली बात यह है कि जिस भी कार्य को आरम्भ करें तो मन में असफल होने का विचार तक न आने दें। बल्कि कार्य आरम्भ करते ही यह भावना बनानी चाहिए कि मैं इस कार्य को करने में एकदम समर्थ हूँ और मेरे असफल होने का तो प्रश्न ही पैदा ही नहीं होता है। आरम्भ में जो इस प्रकार का विश्वास बनाया है, उसे कार्य करते हुए निरन्तर बनाए रखें। यदि किसी प्रकार की कोई बाधा आए तो महापुरुषों के जीवन की कठिन घटनाओं का स्मरण कर लिया करें, इससे आपको कार्य करने की और भी अधिक शक्ति तथा साहस पैदा होगा।

किसी भी कार्य को आरम्भ करें तो प्रसन्नता के साथ करें। उसे एक बोझ समझकर नहीं, बल्कि दायित्व समझकर करें। काम के प्रति उकताहट नहीं, बल्कि अनुराग की भावना को भी निरन्तर साथ रखें। इससे आपका उत्साह कभी भी कम नहीं होगा, बल्कि निरन्तर बढ़ता ही जाएगा। अपने कार्य में रस लेना सीखें। कहते हैं कि एक अध्यापक ने अपने दो छात्रों को दण्ड के रूप में किसी एक ही विषय पर बीस पंक्तियाँ लिखने को कहा। दोनों छात्र इस काम में लग गए। जब कुछ समय व्यतीत हो गया तो अध्यापक ने कहा कि चलो मैं तुम्हारा दण्ड कुछ कम कर देता हूँ। आप केवल दस पंक्तियाँ ही लिखें। अध्यापक की बात सुनकर एक छात्र तो एकदम खड़ा हो गया कि मैंने दस पंक्तियाँ लिख ली हैं, मगर दूसरे छात्र ने अध्यापक से विनम्र प्रार्थना करते हुए कहा कि मान्यवर महोदय, कृपया अभी मुझे लिखने से न रोकें। मैंने बीस पंक्तियाँ तो लिख ली हैं, मगर इस विषय पर मुझे बहुत ही सार्थक एवं अद्‌भुत और उत्तम विचार आ रहे हैं और मैं उन्हें लिखना चाहता हूँ। इस विषय पर मेरा यह बहुत महत्त्वपूर्ण लेख बन जाएगा। अध्यापक उसकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। काम में रस लेने से इस प्रकार की स्थितियाँ बना करती है।

प्रत्येक सरल कार्य को भी इस प्रकार करें कि जैसे आप किसी कठिन कार्य को करने के लिए कटिबद्ध हैं और कठिन कार्य को इस प्रकार करें जैसे आप कोई बहुत ही सरल कार्य कर रहे हैं। इससे आपको अपने कार्य में अद्‌भुत सफलता प्राप्त होगी। एक बात का यह भी स्मरण रखें कि कार्य को टालने का विचार मन में न आने दें। यदि एक बार ऐसा कर दिया तो फिर काम को टालने का स्वभाव बन जाएगा। कोई भी कार्य करें तो उसमें केवल अपना ही हित सोचकर न करें बल्कि उस कार्य से आपके परिवार को, समाज को तथा देश का कितना लाभ होगा, इस प्रकार की मंगलकामना रखने से उस कार्य में उत्कृष्टता आएगी। एक मजदूर जब कार्य करे तो वह केवल इतना भर न सोचे कि यह काम करने से मेरे परिवार का भरण-पोषण होगा बल्कि यह भी सोचे कि इससे मेरे मालिक का भी हित होगा, इससे समाज और देश को भी लाभ होगा। इसी प्रकार मालिक का चिन्तन भी सार्वभौमिक होना चाहिए। इस भावना से कार्य में जहाँ एक ओर पवित्रता आएगी, वहीं दूसरी ओर काम की गुणवत्ता में भी वृद्धि होगी। आपके सामने जब अपनी ही नहीं बल्कि सबके भले की भावना होगी तो उस कार्य में आने वाली बाधाओं को आप सहर्ष स्वीकार कर सकने का सामर्थ्य प्राप्त करेंगे। बाधा छोटी हो या बड़ी, उसे इस रूप में स्वीकार करें कि

परमात्मा मेरे सामर्थ्य की, बुद्धि की, कार्य-कुशलता की तथा धैर्य की परीक्षा ले रहे हैं तथा मुझे इसमें हर हालत में सफल होकर ही दिखाना है। इससे आपका आत्मबल तथा परिश्रम की भावना में दृढ़ता आएगी।

आप बाधाओं को दूर करने के लिए पूरे व सच्चे मन से परमात्मा से प्रार्थना कर सकते हैं। आप देखेंगे कि इससे आपके भीतर अपार शक्ति आएगी। महर्षि दयानन्द जी 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' में लिखते हैं- 'अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त, उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए परमेश्वर वा किसी सामर्थ्य वाले मनुष्य का सहाय लेने को 'प्रार्थना' कहते हैं। 'सत्यार्थप्रकाश' (सप्तम समुल्लास) में महर्षि जी बहुत ही सुन्दर एवं सार्थक उपदेश देते हुए कहते हैं- ''देखो सृष्टि के बीच में जितने प्राणी हैं अथवा अप्राणी, वे सब अपने-अपने कर्म और यत्न करते हैं। जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते और वृक्षादि सदा बढ़ते-घटते रहते हैं, वैसे यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय दूसरा भी करता है, वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले पुरुष को भृत्य करते हैं (अर्थात् रखते हैं), और अन्य आलसी को नहीं। देखने की इच्छा करने और नेत्रवाले को दिखलाते हैं, अन्धे को नहीं। इसी प्रकार परमेश्वर भी सबके उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है, हानिकारक कर्म में नहीं। जो कोई 'गुड़ मीठा है' ऐसा कहता (ही) है, उसको गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है, उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है।'' महर्षि अन्यत्र लिखते हैं- ''सब मनुष्यों को अपने मित्र और सब प्राणियों के सुख के लिए परमेश्वर की प्रार्थना करना और वैसा ही अपना आचरण करना चाहिए, जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें, वैसा ही उनका पुरुषार्थ भी करना चाहिए'' (यजु. ३-२६)

वास्तव में प्रार्थना तो अपने भीतर एक आत्मविश्वास और उत्साह प्राप्त करने के लिए की जाती है और इसके लिए पूर्ण श्रद्धा व समर्पण की जरूरत होती है। समर्पण के लिए व्यक्ति को अहंकाररहित होना भी अनिवार्य है। असल में हर कोई छोटा व्यक्ति किसी बड़े की सहायता चाहता ही है और यह एक स्वाभाविक कामना है। कोई भी कष्ट तथा बाधा आने पर हम किसी न किसी समर्थ एवं शक्तिशाली की सहायता में ही अपने आप को सुरक्षित तथा सामर्थ्यवान् अनुभव कर पाते हैं और सही ढंग से की गई प्रार्थना से व्यक्ति को यह उपलब्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार कर्मशीलता की भावना से भरी, अहंकाररहित, श्रद्धा, समर्पण और हृदय से निकली हुई प्रार्थना निश्चित रूप से सफलीभूत होती है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में महर्षि लिखते हैं- ''इस प्रकार से जो मनुष्य अपनी सब चीजें परमेश्वर के अर्थ समर्पित कर देता है, उसके लिए परमकारुणिक परमात्मा सब सुख देता है, इसमें सन्देह नहीं।'' जब आपके अपने बल और पुरुषार्थ के साथ परमात्मा की सहायता का भाव जुड़ जाता है तो प्रत्येक बाधा बहुत बौनी हो जाती है। इस प्रकार से जब व्यक्ति आगे बढ़ता है तो उसे लगता है कि वास्तव में संसार में कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जो आपके मन की शक्ति से बड़ा हो। किसी ने बहुत ही सुन्दर कहा है-

सत्य को कहने के लिए, किसी शपथ की जरूरत नहीं होती।
नदियों को बहने के लिए, किसी पथ की जरूरत नहीं होती।
जो बढ़ते हैं जमाने में, अपने मजबूत इरादों पर,
उन्हें अपनी मंजिल पाने के लिए, किसी रथ की जरूरत नहीं होती।

जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने, सुगन्धि, पुष्टि, मधुरता रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि के बीच में उनका होम कर शुद्ध वायु, वर्षा का जल वा ओषधियों का सेवन करके शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५८

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद-पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ दिसम्बर से ३१ दिसम्बर २०१७ तक)

१. श्री नवीन मिश्रा, अजमेर २. श्री अतुल शर्मा, अजमेर ३. श्री ओमप्रकाश देवेश्वर, नई दिल्ली ४. श्री पवन नागपाल व श्रीमती रेणुका नागपाल, अबोहर ५. पण्डित सतीश कुमार, फिरोजपुर ६. श्री वृद्धिचन्द गुप्त, जयपुर।

परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

जमानी आश्रम में संचालित गोशाला के दानदाता

(१६ दिसम्बर से ३१ दिसम्बर २०१७ तक)

१. श्री रवि कुमार, पुणे २. श्री बलचन्द्र आर्य, पुणे ३. श्री नारायण पंडा, ब्रह्मपुर ४. श्री इतिश्री पात्रो, ब्रह्मपुर ५. श्री नरसिंह माहत्र, ब्रह्मपुर ५. श्री कमलेश चौरे, जमानी इटारसी ६. श्रीमती सारदा बाई एके, नन्दनवाड़ा, सिवनी मालवा ७. श्री हेमन्त दुबे, जमानी, इटरासी ८. श्री गुड्डू पटेल दुबे, जमानी, इटारसी ९. श्री दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, इटारसी १०. वेदप्रकाश शर्मा, भोपाल ११. श्री आशीष विश्वकर्मा, इटारसी १२. श्री सुजेश आर्य, छिन्दवाड़ा।

- परोपकारिणी सभा, अजमेर।

व्याकरण एवं दर्शन के अध्ययन हेतु प्रवेश प्रारम्भ

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी **परोपकारिणी सभा के द्वारा 'महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल' ऋषि उद्यान, अजमेर** में पिछले १८ वर्षों से प्रारम्भिक संस्कृत ज्ञान, पाणिनीय व्याकरण और दर्शनों के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। अतः व्याकरण एवं दर्शन पढ़ने के इच्छुक विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।

इस काल में ऋषि उद्यान में प्रतिदिन यज्ञोपरान्त उपदेश व प्रवचन का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा। समय-समय पर विविध विषयों पर विद्वानों द्वारा कक्षायें भी होती रहेंगी। ब्रह्मचारियों के लिए निवास और भोजन व्यवस्था निःशुल्क रहेगी। प्रवेश लेने वाले ब्रह्मचारियों के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं-

- आयु न्यूनतम १६ वर्ष हो।
- न्यूनतम १०वीं कक्षा पढ़े हुए विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।
- गुरुकुल के अनुशासन का पालन करना अनिवार्य होगा।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

स्वामी विष्वङ् परिव्राजक - ९४१४००३७५६

समय- ९:००-१०:००प्रातः, १२:३०-१:३० मध्याह्न

पता- महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर (राज.) ३०५००१

वानप्रस्थ

प्रकाश चौधरी

वेद एवं वैदिक संस्कृति जीवन को सही और शुद्ध मार्ग पर चलाने के लिए नियम एवं कानून के ग्रन्थ हैं। समाज और राष्ट्र की व्यवस्था के लिए हर राष्ट्र के पास अपना विधान होता है, भले ही वह मौखिक हो या लिखित। इसी प्रकार जीवन को कुछ नियमों में बाँधने के लिए 'वेद' है या वैदिक वैदिक संस्कृति है। यदि जीवन में सभी इन नियमों को अपना लें तो जो ये विधान बने हैं वे भी सफल हो जाएँ। सब जानते हैं कि आज कानून की कितनी अवेहलना हो रही है। वेद तो ईश्वर की तरफ से दी गई व्यवस्था है जो सृष्टि से पूर्व ही बना दी गयी, जैसे शिशु के जन्म लेने से पूर्व ही उसके आहार की व्यवस्था हो जाती है।

वैदिक संस्कृति के अनुसार समाज एवं राष्ट्र को सुव्यवस्थित रखने के लिए वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था का प्रावधान था और वह भी व्यक्ति की योग्यता एवं सामर्थ्य के अनुसार। आज की भांति कोई आरक्षण या जन्म के आधार पर नहीं। सब जानते हैं चार वर्ण और चार ही आश्रमों में जीवन और समाज विभक्त था। राम के समय से भी पूर्व ये व्यवस्था बनी हुई थी परन्तु महाभारत के उपरान्त सब कुछ पलट गया। ना कोई ज्ञानी रहा और न ज्ञान ही। अंधकार, अज्ञानता ही अज्ञानता का जीवन रह गया। ना कोई मार्गदर्शक, न कोई उपदेशकर्त्ता। सारी व्यवस्थाएँ टूट गयीं। समय के परिवर्तन के साथ समाज की क्या दुर्दशा बनी, नारी जाति की क्या दशा हुई, सब जानते हैं। वैदिक संस्कृति का पूर्ण लोप हो गया। ऐसे समय में स्वामी दयानन्द जैसा साहसी व्यक्ति हुआ, जिसने निष्प्राण आर्य जाति में आर्यों के उच्च आदर्शों को पुनः प्रतिष्ठित करने का संकल्प लिया। जहाँ हमारी संस्कृति में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम, आयु, समय, कर्त्तव्यों का बोध एवं मूल्य सब नष्ट हो चुके थे, बालविवाह, गर्भ में शिशु का विवाह आदि होने लगे। ऋषि ने फिर से विवाह की आयु निर्धारित की २४, ३६, ४८ का पुरुष और १६ से २४ वर्ष की कन्या। वह भी योग्यता के अनुसार।

उनके इन सुधारों एवं प्रचारों से काशी के 'क्वीन्स कॉलेज' के प्रिंसिपल रुडलम हॉर्निल स्वामी जी के विचारों को जानकर कल्पना करने लगे थे और उन्होंने लिखा हिन्दुओं को यदि विश्वास दिला भी दिया गया कि आज की ये ट्रेडिशन्स (traditions) हमारी नहीं हैं, सम्भवतः वे इन्हें छोड़ भी दें परन्तु वे वैदिक संस्कृति नहीं अपनाएंगे, क्योंकि वह मर चुकी है। नवीनता के लिए वे ईसाई मत को ही चुनेंगे। कुछ हद तक ऐसा ही हुआ। स्वामी जी ने फिर से समाज में वर्ण-व्यवस्था तथा आश्रम-व्यवस्था का वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार (गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार) प्रचार किया। समय की मांग के अनुसार परिवर्तन हुए। इनमें प्रथम आश्रम शिक्षा का आश्रम ब्रह्मचर्य अनिवार्य तथा शेष तीन ऐच्छिक और योग्यता के अनुसार बताए। गृहस्थी, वानप्रस्थी और संन्यासी तभी बने जब उसमें योग्यता और क्षमता हो, नहीं तो उसके अपने लिए हानिकारक होगा और समाज के लिए भी हानिकारक।

यदि कोई गृहस्थी वानप्रस्थ के नियम तथा उच्च आदर्श निभाने में असमर्थ है तो वह गृहस्थ में रह कर भी वही फल पा सकता है जो वानप्रस्थ आश्रम में जाने पर। परन्तु उसे कुछ कर्त्तव्यों का पालन करना होगा। जीवन का लक्ष्य है सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य। जिनमें ये सब गुण हैं तो उसे भगवान भी कहा गया है जैसे- योगिराज श्री कृष्ण तथा मर्यादा पुरुषोततम राम।

पर वह बनेगा कैसे? उसे पाँच कर्त्तव्यों का पालन करना पड़ेगा।

१. अनाशौश्चित- किसी भूखे को अन्न देना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है। ऋग्वेद के मन्त्रों में, गीता के उपदेशों में इसका समर्थन हुआ है। मरते वे भी हैं जो बहुत खाते-पीते हैं। दूसरे को देने से किसी का धन घटता नहीं। जो मिलकर बाँटकर परिवार में सबके अधिकारों को मान देते हुए रहता है, वही पुण्य का भागी है। ऋग्वेद और गीता

कहते हैं कि अकेले खाने वाला स्वार्थी व्यक्ति पाप खाता है। वानप्रस्थी की आयु तक आते हुए वृद्ध का तो ये पहला कर्त्तव्य कहा गया है कि वह परिवार व समाज में ये मुख्य कर्त्तव्य निभाए। अतिथि यज्ञ का भी यही विधान है। इससे वृद्ध व्यक्ति की मित्रता बढ़ेगी, उसके जीवन में मधुरता एवं रस भरेगा, उसे यश प्राप्त होगा।

२. अपमस्यचित होना– ऐसे साधनहीन व्यक्तियों की खोज करना जो बुद्धिमान तो हैं लेकिन साधनविहीन हैं, उनकी सहायता करना, उनको सामर्थ्यशाली बनाना उनका कर्त्तव्य है। कोई विद्यार्थी जो योग्य है, जिज्ञासु है, पर साधनहीन है, अर्थ नहीं है उसके पास, उसकी सहायता अपने सामर्थ्य से करना, पुण्य का कार्य है। कोई अपंग है, उसके लिए कोई छोटा सा कार्य ढूंढना आदि-आदि, ये वानप्रस्थी का मुख्य कर्त्तव्य है।

३. अन्धस्यचित– जो दृष्टि से वंचित हैं, उनके दर्द को समझना चाहिए, वे सहायता के पात्र हैं, उनको कहीं ले जाकर छोड़ना है या रास्ता पार कराना है, इस कार्य के लिए चूकना नहीं चाहिए। अज्ञानी को ज्ञान देने, सलाह देनी, निरक्षर को साक्षर बनाना आदि। यदि समर्थ हैं तो किसी नेत्रहीन का उपचार कराना भी कर्त्तव्य है।

४. कृशस्यचित– जो पाप रोगी हैं, कुष्ठ आदि रोगों से पीड़ित हैं या फिर किसी अन्य रोग से, उनकी सहायता करना पवित्र कर्त्तव्य है। ऐसे व्यक्ति अपना कर्मफल तो भोग ही रहे हैं परन्तु इस अवस्था में उनके कष्ट को कुछ दूर करना वानप्रस्थी का पुण्य कर्त्तव्य होगा। महात्मा गाँधी इस उच्च आदर्श की मिसाल हैं। घावों पर श्रद्धापूर्वक औषधि लगाना, सहानुभूति करना, उनके ताप को हरना है। बलिवैश्वदेव यज्ञ में इसका भी निर्देश है।

५. पाँचवीं बात जो कही गई वह है **रूतस्य भीषजा अविता भवत**– कुछ असाध्य रोग होते हैं जिनका सामान्य व्यक्ति औषधि का प्रबन्ध नहीं कर सकता या पौष्टिक भोजन का प्रबन्ध नहीं कर सकता। ऐसे व्यक्तियों का एक सद्गृहस्थी को ध्यान रखना चाहिए, जैसे उदाहरण के तौर पर– लोधी रोड पर आर्यसमाज का साप्ताहिक सत्संग आर्य हाई स्कूल में लगा करता था। प्रधान लाला जीवन दास चोपड़ा थे। कार्यकर्त्ता भी बड़े उत्साही और धार्मिक भावना से ओतप्रोत थे। प्रधान जी ने सत्संग के उपरान्त सभी को कुछ फल आदि लाने को कहा और सारे कार्यकर्त्ताओं को एक अस्पताल ले गए, हर वार्ड में डयूटी लगाई गई, उन मरीजों को पूछने के लिए जिनको पूछने वाला कोई नहीं था। उन्हें फल बाँटे गए, उनकी आवश्यकताएँ पूछी गयीं, सहानुभूति प्रकट की गई। ऐसे समय में मरीजों की प्रसन्नता का वर्णन नहीं हो सकता। साथ ही कार्यकर्त्ता भी इतने प्रसन्न हुए कि फिर से आने का उन्होंने निश्चय किया। ये सेवा-भाव जो करने से स्थापित हुआ, वह शायद वार्ता या उपदेश आदि से भी नहीं होता।

जो गृहस्थ अपने वार्धक्य को इस प्रकार बिताते हैं, उनका पुण्य किसी वानप्रस्थी से किसी प्रकार से कम नहीं होता। परिश्रम के उपरान्त जो उसके हिस्से में आता है, उसे अमृत समझकर स्वीकार करे। सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी लिखते हैं कि वानप्रस्थी को उचित है कि वह स्वाध्याय करता हुआ, दूसरों को पढ़ाता हुआ, सबका मित्र, सब पर दयालु तथा सत्संग करता हुआ सत्य आचरण करता हुआ योगाभ्यास तथा सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित गुरुकुल आश्रम जमानी, इटारसी, म.प्र. के तत्त्वावधान में आदिवासी क्षेत्रों में यज्ञ व वैदिक धर्म पर प्रवचनों का कार्यक्रम आयोजित किया गया। आचार्य सत्यप्रिय, बालकृष्ण मालवीय आदि क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता एवं समाजसेवी संगठनों द्वारा सहभोज का आयोजन किया गया। आदिवासी क्षेत्रों में इस सकारात्मक पहल की बहुत प्रशंसा की गई। **सम्बन्धित चित्र आवरण पृष्ठ सं. २ पर देखें**

पाठकों की प्रतिक्रिया

माननीय सम्पादक जी

परोपकारी के दिसम्बर-प्रथम तथा द्वितीय अंक में 'ऐतिहासिक कलम' इस स्तम्भ में आचार्य उदयवीर शास्त्री जी का लेख 'वेद ईश्वरीय ज्ञान क्यों?' पढ़कर आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता हुई, क्योंकि आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में वेदकथा के अवसर पर कुछ इसी प्रकार का ऊहापोह-युक्त एक प्रवचन मैंने दिया था, जिसमें आचार्य रामनाथ वेदालंकार जी भी उपस्थित थे, या यूँ कहें कि वे मेरे प्रवचन सुनने के लिए ही उपस्थित थे, मेरे प्रवचन को सुनकर वे अत्यन्त आह्लादित और भावविभोर हो गये। इसका प्रमाण मुझे तब मिला, जब मैं आश्रम में प्रवचन के पश्चात् प्रभात आश्रम लौट रहा था। आचार्य जी से पुनः बातचीत हुई। उन्होंने चलते समय मुझसे एक प्रश्न ही पूछ लिया कि- अब इस प्रकार के विद्वान् संन्यासी क्यों नहीं हो रहे हैं? मैं उनके प्रश्न को सुनकर स्तब्ध रह गया, किन्तु कुछ कहना तो था ही, इसलिए मैंने उनसे केवल इतना ही कहा कि इस विषय में तो, आचार्य जी आप मुझसे अधिक जानते हैं। इसी प्रकार भाई परमानन्द जी का लेख 'हिन्दू जाति के रोग का वास्तविक कारण क्या है?' भी प्रशस्य है।

पत्रिका आचार्य धर्मवीर जी के जाने के बाद भी अपनी गरिमा बनाए हुए है, इसके लिए धन्यवाद।

- विवेकानन्द,
गुरुकुल प्रभात आश्रम, मेरठ

पाठकों के विचार

१. महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी चल-अचल सम्पत्ति से परोपकारिणी सभा स्थापित की और उसमें भारतवर्ष के तमाम लोग सदस्य बने। बड़ौदा के गायकवाड़, उदयपुर के सज्जनसिंह जी, शाहपुरा के राजा और एक समय आया कि चौ. चरणसिंह प्रधान बने। अब परोपकारिणी सभा में गोशाला की जगह नहीं रह गई है। वैदिक पुस्तकालय की पुस्तकें अब भारतवर्ष में पहुँचनी चाहिये। परोपकारी अब समस्त भारत में जानी चाहिये।

- श्री रणजीतसिंह सिकरवार, ४ए, पार्क रोड,
उस्मानी बिल्डिंग, लखनऊ

२. मान्यवर! सादर नमस्ते,

दुर्ग (छत्तीसगढ़) के 'अग्निदूत' अक्टूबर २०१७, पृष्ठ २६ पर प्रकाशित श्री रघुराज शास्त्री का ''समझ लें या शास्त्रार्थ कर लें' अयन्त इध्म आत्मा से प्रथम समिदाधान एवं पंचघृताहुतियाँ लगाना आर्ष परम्परा के विरुद्ध है।''

क्या आर्यजगत् इस भूत का इलाज कर सकता है?

सत्यदेव प्रसाद आर्य 'मरुत', आर्यसमाज नेमदारगंज, नवादा

एक आहुति
अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गौशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की निःशुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

- मन्त्री

संस्था-समाचार

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में ऋषि दयानन्द सरस्वती के अनन्य अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्द जी के धर्म पर बलिदान होने, उनकी शहादत को याद करते हुए दिनांक २३ दिसम्बर को सभी आश्रमवासियों एवं विद्यार्थियों ने यज्ञशाला में उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित की एवं उनके जीवन से प्रेरणा लेकर देश-धर्म का कार्य करने का संकल्प लिया। इस अवसर पर प्रात:कालीन यज्ञ के पश्चात् उपाचार्य सत्येन्द्र आर्य ने स्वामी जी के जीवन तथा उनके द्वारा आर्यसमाज के लिये किये गये कार्यों पर विस्तार से प्रकाश डाला। श्री लक्ष्मण मुनि, श्री आर्येश्वर, ब्र. भूदेव, ब्र. मनोज, ब्र. रविशंकर तथा आश्रमवासी साधक-साधिकाओं ने स्वामी जी से सम्बन्धित गीत, भजन एवं विशेष घटनाओं को प्रस्तुत किया।

विशिष्ट व्यक्तित्व- सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् एवं परोपकारिणी सभा के सदस्य आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश जी अब ऋषि उद्यान में निवास करेंगे। यहाँ गुरुकुल में पढ़ने वाले ब्रह्मचारियों, वैदिक धर्मानुयायियों एवं सभी जिज्ञासुओं को उनका मार्गदर्शन तथा सान्निध्य निरन्तर प्राप्त होगा।

विदाई- परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल ऋषि उद्यान में आचार्य पद पर सेवाएँ देने के पश्चात् आचार्य सत्यजित् आर्य ने आचार्य पद छोड़ दिया है। दिनांक ३१ दिसम्बर को उन्होंने इसकी औपचारिक घोषणा की। साथ ही स्वामी मुक्तानन्द परिव्राजक ने भी गत दिनों गुरुकुल में अध्ययन व अध्यापन का कार्य किया। उन्होंने भी ऋषि उद्यान से २९ दिसम्बर को विदाई ली। परोपकारिणी सभा दोनों ही विद्वानों का उनकी सेवाओ के लिये धन्यवाद ज्ञापित करती है।

जन्मदिवस पर यज्ञ- ऋषि उद्यान की विशाल यज्ञशाला में २२ दिसम्बर को सभा के कोषाध्यक्ष श्री सुभाष नवाल की पुत्रवधु श्रुति नवाल का जन्मदिवस मनाया गया। २९ दिसम्बर को श्रीमती रश्मिप्रभा शास्त्री के पुत्र लखनऊ निवासी रुद्रदेव द्विवेदी का जन्मदिवस मनाया गया। इस अवसर पर स्वामी विष्वङ्, गुरुकुल के अन्य आचार्यों, संन्यासियों, वानप्रस्थियों, साधकों ने यजामानों को आशीर्वाद प्रदान किया। परोपकारिणी सभा की ओर से दोनों यजमानों को जन्मदिवस की हार्दिक शुभकामनाएं।

अतिथि- अजमेर नगर में केसरगंज स्थित ऐतिहासिक महर्षि दयानन्द आश्रम, अनुसन्धान भवन एवं पुस्तकालय, ऋषि निर्वाण स्थल-भिनाय कोठी, ऋषि उद्यान में महर्षि दयानन्द सरस्वती संग्रहालय आदि देखने, संन्यासियों-विद्वानों से मिलकर शंका समाधान करने, दैनिक यज्ञ एवं प्रवचन से लाभ लेने, पुष्कर आदि पर्यटन स्थलों में भ्रमण एवं आर्यसमाज के प्रचार के लिए देश-विदेश के संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान्, ब्रह्मचारी, आर्यवीर, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता आदि निरन्तर आते रहते हैं। पिछले १५ दिनों में रोजड़, इलाहाबाद, रोहतक, जयपुर, पुष्कर, चापानेरी, अबोहर, तबीजी, आबू रोड, कोटा, दिल्ली, पाली, बाड़मेर, कोरापेट, भीलवाड़ा, ब्यावर, गुड़गांव, जोधपुर आदि स्थानों से ८३ अतिथिगण ऋषि उद्यान पधारे।

दैनिक प्रवचन- प्रात:कालीन प्रवचन में स्वामी विष्वङ् परिव्राजक, आचार्य सत्यजित् एवं ब्र. वरुणदेव के प्रवचन हुए। सायंकालीन प्रवचन में सोमवार से शुक्रवार तक उपाचार्य सत्येन्द्र आर्य ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पुस्तक पर चर्चा एवं शंका समाधान करते हैं। शनिवार सायंकालीन प्रवचन में श्री आर्येश्वर ने आर्यसमाज से सम्पर्क होने की घटना सुनाई। रविवारीय प्रात:कालीन सत्संग में श्रीमती रश्मिप्रभा शास्त्री ने भजन सुनाया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित गुरुकुल आश्रम जमानी, इटारसी, म.प्र. का वार्षिकोत्सव दि. १९, २०, २१ जनवरी २०१८ को मनाया जा रहा है। यह आश्रम अपने क्षेत्र में आर्यसमाज एवं वैदिक विचारधारा के प्रचार-प्रसार में सतत प्रयत्नशील है। आप सभी उत्सव में सादर आमन्त्रित हैं। **सम्पर्क- ९११३१९६९१७३**

आर्यजगत् के समाचार

१. आवश्यकता- गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय शुक्रताल, मुजफ्फरनगर, उ.प्र. को ३ संस्कृत विषय (व्याकरण अथवा साहित्य) में प्रशिक्षित। आचार्य उपाधि प्रथम श्रेणी तथा दो आधुनिक विषय अध्यापक- एक गणित, एक अंग्रेजी विषय से प्रथम श्रेणी में एम.ए. प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता है। वेतन राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान जनकपुरी नई दिल्ली के मानदेयानुसार रु. ९६०००/- (रु. छियानवे हजार) वार्षिक है। १५ जनवरी २०१८ तक सम्पर्क करें। दूरभाष- ०९९९७४३७९९०

२. वार्षिकोत्सव सम्पन्न- आर्यसमाज जवाहर नगर, लुधियाना का तीन दिवसीय वार्षिक उत्सव १७ दिसम्बर २०१७ को सम्पन्न हुआ, जिसमें पं. बालकृष्ण शास्त्री ने यज्ञ सम्पन्न करवाया। इस अवसर पर एस.डी.पी. कॉलेज फॉर वुमन लुधियाना की पाँच छात्राओं को बी.ए. फाइनल की परीक्षा में संस्कृत विषय में अपने महाविद्यालय में प्रथम पाँच स्थान प्राप्त करने पर श्रीमती सुमित्रा देवी बस्सी द्वारा आरक्षित राशि से पारितोषिक एवं स्मृति चिह्न देकर सम्मानित किया गया।

३. बलिदान दिवस सम्पन्न- जिला आर्य प्रतिनिधि सभा जनपद आगरा के तत्वावधान में २३ व २४ दिसम्बर २०१७ को श्री केदारनाथ सेकसरिया आर्य कन्या इण्टर कॉलेज, बेलनगंज, आगरा में अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द स्मृति एवं बलिदान दिवस समारोह कार्यक्रम धूमधाम से सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम में उपस्थित विद्वान् महानुभावों व आचार्यों ने अपने-अपने उद्बोधन में स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला। साथ ही आर्यवीर दल के आर्यपुत्रों ने अपना शौर्य प्रदर्शन भी दिखाया।

वैवाहिक

४. वर चाहिये- आर्य परिवार, संस्कारित, जन्म तिथि- १५ जून १९९२, कद- ५ फुट ५ इंच., शिक्षा- प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल चोटीपुरा, बी.टैक, भारत सरकार की पी.एस.यू. हिन्दुस्तान एरोनोटिक्स बेंगलूरु में उपप्रबन्धक पद पर कार्यरत, गौर वर्ण युवती हेतु आर्यसमाजी परिवार का समकक्ष संस्कारित युवक चाहिए। **सम्पर्क**- **०८३६८५०८३९५, ०९४५६२७४३५०**

चुनाव समाचार

५. आर्यसमाज कटनी, सिविल लाइन्स, म.प्र. के चुनाव में **संरक्षक**- श्री विश्वदीप पाण्डेय, **प्रधान**- श्री अश्विनी सहगल, **मन्त्री**- विद्यावाचस्पति श्री नरेन्द्र विश्वकर्मा, **कोषाध्यक्ष**- श्री संदीप मनोचा को चुना गया।

शोक समाचार

६. परोपकारिणी सभा के कार्यकर्ता व ड्राईवर श्री श्यामसिंह राजावत के पिता **श्री सोहनसिंह राजावत** का दि. १४ दिसम्बर २०१७ को ७८ वर्ष की आयु में हृदयगति रुक जाने के कारण निधन हो गया। वे स्वाधायशील तथा वैदिक संस्कृति प्रति पूर्णरूप से समर्पित थे। उनका अन्त्येष्टि संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। परोपकारिणी सभा-परिवार इस कष्ट में परिजनों के लिये ईश्वर से साहस एवं धैर्य की प्रार्थना करते हुए हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है।

७. परोपकारिणी सभा कार्यालय के कार्यकर्ता श्री मोहनचन्द तँवर की पत्नी श्रीमती कमला देवी का दि. ०४ जनवरी २०१८ को ७५ वर्ष की आयु में हृदयगति रुक जाने के कारण निधन हो गया। वे स्वाधायशील तथा वैदिक संस्कृति व आर्यसमाज के प्रति पूर्णरूप से समर्पित भावनाओं से युक्त थी। उनका अन्त्येष्टि संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। परोपकारिणी सभा-परिवार इस कष्ट में परिजनों के लिये ईश्वर से साहस एवं धैर्य की प्रार्थना करते हुए हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है।

मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें। **- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६३**